55 2

अनेकान्त

वीर सेवा मंदिर
21, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

वीर सेवा मंदिर का त्रैमासिक

अनेकान्त

प्रवर्त्तक : आ. जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

इस अंक में -

कहाँ/क्या?

वर्ष-55, किरण 2
अप्रैल-जून 2002

सम्पादक :
डॉ. जयकुमार जैन
261/3, पटेल नगर
मुजफ्फरनगर (उ प्र)
फोन : (0131) 603730

परामर्शदाता :
पं. पदमचन्द्र शास्त्री

संस्था की
आजीवन सदस्यता
1100/
वार्षिक शुल्क
30/-
इस अंक का मूल्य
10/
सदस्यो व मंदिरो के
लिए नि:शुल्क

प्रकाशक :
भारतभूषण जैन, एडवोकेट

मुद्रक :
मास्टर प्रिन्टर्स 110032

विशेष सूचना : विद्वान् लेखक अपने विचारो के लिए स्वतन्त्र हैं। यह आवश्यक नही कि सम्पादक उनके विचारों से सहमत हो। इसमें प्राय: विज्ञापन एवं समाचार नहीं लिए जाते।

वीर सेवा मंदिर

21, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, दूरभाष : 3250522

संस्था को दी गई सहायता राशि पर धारा 80-जी के अंतर्गत आयकर मे छूट

(रजि आर 10591/62)

अपनी सुधि भूलि आप

-पण्डितप्रवर दौलतराम

अपनी सुधि भूलि आप, आप दुख उपायौ।
ज्यौं शुक नभ चाल विसरि, नलिनी लटकायौ॥ अपनी.॥

चेतन अविरुद्ध शुद्ध, दरश बोधमय विशुद्ध।
तजि जड रत फरस रूप, पुद्गल अपनायौ॥ अपनी.॥

इन्द्रिय सुख दुख में नित्त, पाग राग रुख में चित्त।
दायक भव विपति वृन्द, बन्ध कौ बढ़ायौ॥ अपनी.॥

चाह दाह दाहै, त्यागौ न ताह चाहे।
समता सुधान गाहै, जिन प्रकट जो बतायौ॥ अपनी.॥

मानुष भव सुकुल पाय, जिनवर शासन लहाय।
"दौल" निज स्वभाव भज, अनादि जो न ध्यायौ॥ अपनी.॥

सम्पादकीय

दिगम्बर जैन शास्त्रों में वैशाली भगवान् महावीर की ननिहाल के रूप में वर्णित है। वैशाली के राजा चेटक महावीर की माता प्रियकारिणी (त्रिशला) के पिता थे। राजा चेटक के दस पुत्र और सात पुत्रियाँ थीं। इनमें से दो पुत्रियों ने विवाह न करके दीक्षा ग्रहण कर ली थी। (श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार चेटक महावीर की माता के भाई माने गये हैं।) अतएव भगवान् महावीर से गहरा संबन्ध होने के कारण वैशाली में उनके प्रति अगाध आस्था का होना स्वाभाविक ही है।

जैन वाङ्.मय में भगवान् महावीर का जन्मस्थान विदेह देश में कुण्डपुर या कुण्डलपुर के नाम से उल्लिखित हुआ है। आचार्य पूज्यपादकृत निर्वाण भक्ति, आचार्य जिनसेनकृत हरिवंशपुराण, आचार्य गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, महाकवि असगकृत वर्द्धमानचरित, दामनन्दिकृत पुराणसारसंग्रह, विबुध श्रीधर कृत वड्ढमाणचरिउ, पं. आशाधरकृत त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र आदि ग्रन्थों में कुण्डपुर तथा भट्टारक सकलकीर्तिकृत वीरवर्धमान चरित, महाकवि पद्मकृत महावीररास तथा पश्चाद्वर्ती साहित्य में प्राय: कुण्डलपुर का भगवान् महावीर की जन्मभूमि के रूप में उल्लेख हुआ है। बिहार में नालन्दा जिला मुख्यालय से 3 कि. मी. दूर बड़गाँव नामक एक गाँव है, इस गाँव के बाहर एक प्राचीन जिनालय है, जो कुण्डलपुर नाम से प्रसिद्ध है तथा भगवान् महावीर की जन्मभूमि माना जाता रहा है। सुप्रसिद्ध जैन विद्वान् पं. बलभद्र जी ने 1975 ई. में प्रकाशित 'भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र' में इस कुण्डलपुर के विषय में लिखा है-

''कुण्डलपुर बिहार प्रान्त के पटना जिले में स्थित है। यहाँ का पोस्ट आफिस नालन्दा है और निकट का रेलवे स्टेशन भी नालन्दा है। यहाँ भगवान् महावीर के गर्भ, जन्म और तप कल्याणक हुए थे, इस प्रकार की मान्यता कई

शताब्दियों से चली आ रही है। यहाँ पर एक शिखरबन्द मन्दिर है, जिसमें भगवान् महावीर की श्वेतवर्ण की साढ़े चार फुट अवगाहना वाली भव्य पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। यहाँ वार्षिक मेला चैत्र सुदी 12 से 14 तक महावीर के जन्मकल्याणक को मनाने के लिए होता है।''

गत छह दशकों में कुण्डग्राम, वासुकुण्ड (वासोकुण्ड) वैशाली को भगवान् महावीर की जन्मस्थली माना जाता रहा है। यद्यपि पं. सुमेरचन्द्र जैन दिवाकर आदि कुछ जैन विद्वान् इससे अपनी सहमति नहीं बना पाये तथापि पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री एवं डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन आदि ने वैशाली को जन्मस्थली मानने में अपनी सहमति व्यक्त की है। 31 मार्च 1945 ई. को मुजफ्फरपुर जिले के बसाढ़ गाँव को वैशाली के रूप में उद्धार करने के लिए बिहार सरकार के तत्कालीन शिक्षा सचिव श्री जगदीशचन्द्र माथुर, डॉ. योगेन्द्र मिश्र, श्री जगन्नाथ प्रसाद साहू आदि ने मिलकर एक वैशाली संघ नामक संगठन की स्थापना की तथा जन सहयोग से यहाँ तीर्थकर महावीर के नाम पर एक हाई स्कूल की स्थापना की। इस संघ के प्रयासों के फलस्वरूप 3 वर्ष बाद 21 अप्रैल 1948 ई. को बसाढ़ गाँव में भगवान् महावीर की जन्मजयन्ती का प्रथम बार आयोजन किया गया। इस समारोह में जथरिया भूमिहारों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। बाद में वैशाली संघ और बिहार सरकार की ओर से प्रतिवर्ष महावीर जयन्ती मनाई जाने लगी। वैशाली संघ ने 1955 ई. में वैशाली में एक रिसर्च इन्स्टीट्यूट की स्थापना की। इसकी स्थापना में साहू शान्ति प्रसाद जैन का महनीय अवदान रहा है। 1951 ई. में स्थापित 'वैशाली कुण्डपुर तीर्थ प्रबन्धक कमेटी' ने वैशाली में जैन विहार नामक एक धर्मशाला बनवाई तथा यहाँ से लगभग 5 कि. मी. की दूरी पर भगवान् महावीर की जन्मस्थली को प्रचारित-प्रसारित किया। परिणाम स्वरूप गत आधी सदी में यह स्थान भगवान् महावीर की जन्मभूमि मान लिया गया।

भगवान् महावीर की 2600 वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में भगवान् महावीर का एक विशाल एवं भव्य स्मारक वैशाली में निर्माणाधीन है। सम्पूर्ण जैन समाज को इसका स्वागत करना चाहिए। पूज्य ज्ञानमती माता जी के प्रयास

से कुण्डलपुर (नालन्दा) का विकास हो, इसका भी कहीं से विरोध नही होना चाहिए। हाँ, पुरातत्त्वविदों, इतिहासज्ञों तथा परम्परागत जैन विद्वानों को मिल-बैठकर भगवान् महावीर की जन्मस्थली सर्वसम्मति से एक स्वीकार कर लेना चाहिए चाहे वह वैशाली का कुण्डग्राम/वासोकुण्ड हो या नालन्दा का कुण्डलपुर। कहीं ऐसा न हो कि विवादों की यह प्रवृत्ति बढ़ती ही जावे और हमारे सभी तीर्थक्षेत्र अन्य-अन्य स्थानों पर कल्पित कर लिये जायें।

अनेकान्त के गत अंक 55/1 में आर्यिका श्री चन्दनामती माता जी का एक आलेख ''भगवान् महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर-एक वास्तविक तथ्य'' प्रकाशित किया था। प्रस्तुत अंक में डॉ. ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार' का ''भगवान् महावीर का जन्मस्थान'' आलेख प्रकाशित कर रहे हैं। दोनों ने अपने-अपने समर्थन में प्रमाण दिये हैं। सुधी मनीपियों से विनम्र निवेदन है कि वे इन्हें देखकर तथा अन्य शास्त्रीय, पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर भगवान् महावीर की जन्मस्थली का सर्वसम्मत निर्णय खोजें ताकि अनावश्यक संभावित विवाद को रोका जा सके।

-जयकुमार जैन

भगवान् महावीर का जन्म-स्थान

गत अंक में आर्यिका चन्दनामती जी का एक लेख भगवान् महावीर की जन्मभूमि के सन्दर्भ में प्रकाशित किया था। उसी कड़ी में कुण्डलपुर के विषय में ही प्रस्तुत लेख विचारार्थ प्रस्तुत है-

सम्पादक

-डॉ. ऋषभचन्द्र जैन ''फौजदार''

भगवान् महावीर के 2600 वें जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष के प्रसंग में पूरा राष्ट्र एवं जैन समाज, सामूहिक तथा एकल रूप में अनेक कार्यक्रम आयोजित कर रहा है। ऐसे समय में भगवान महावीर के जन्म स्थान के सम्बन्ध में भ्रम पैदा करना जैन समाज के लिए शुभ लक्षण नहीं है। इसी वर्ष मई-2001 के **'सम्यग्ज्ञान'**, अप्रैल-जून-2001 के **'अर्हत् वचन'** और दिसम्बर-2001 के **'जैन महिलादर्श'** में **''भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर''** शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है, जो प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती माता जी द्वारा लिखित है। पुन: फरवरी-2002 के **'सम्यज्ञान'** के उक्त माता जी का ही **''बजी कुण्डलपुर में बधाई, वैशाली कहाँ से आई''** शीर्षक लेख भी छपा है। उक्त लेखों में पूज्य माता जी ने मगधदेश के **''कुण्डलपुर''** को विदेह का सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, जो उचित नहीं है। इसी प्रसंग में मेरा यह विनम्र प्रयास है।

यहाँ भगवान् महावीर के जन्म स्थान से सम्बद्ध शास्त्रीय उद्धरण मूलरूप में हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

1. सिद्धार्थनृपतितनयो भारतवास्ये विदेहकुण्डपुरे।
   देव्यां प्रियाकारिण्यां सुस्वप्नान् संप्रदर्श्य विभु:।।

   –आचार्य पूज्यपाद (5 वीं शती ई.) निर्वाणभक्ति, पद्य-4.

''भगवान् महावीर का जीव भारतवर्ष में विदेह (देश) के कुण्डपुर नगर में उत्तम स्वप्नों को दिखाकर प्रियकारिणी देवी और सिद्धार्थ राजा का पुत्र हुआ।''

2. अथ देशोऽस्ति विस्तारी जम्बूद्वीपस्य भारते।
विदेह इति विख्यातः स्वर्गखण्डसमः श्रियः।। 2/1
तत्राखण्डलनेत्रालीपद्मिनीखण्डमण्डलम्।
सुखाम्भः कुण्डभाभाति नाम्ना कुण्डपुरं पुरम्।। 2/5

-जिनसेन (8 वीं शती ई.) हरिवंशपुराण, 2/1 एवं 5.पृ.12.

"अथानन्तर इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में लक्ष्मी से स्वर्ग-खण्ड की तुलना करने वाला, विदेह इस नाम से प्रसिद्ध एक बड़ा विस्तृत देश है। उस विदेह देश में कुण्डपुर नाम का एक ऐसा सुन्दर नगर है, जो इन्द्र के नेत्रों की पंक्तिरूपी कमलिनियों के समूह से सुशोभित है तथा सुखरूपी जल का मानो कुण्ड ही है।"

3. तस्मिन्षण्मासशेषायुष्यानाकादागमिष्यति।
भरतेऽस्मिन्विदेहाख्ये विषये भवनांगणे।।
राज्ञः कुण्डपुरेशस्य वसुधारापतत्प्रथु।
सप्तकोटिर्मणिः सार्धा सिद्धार्थस्य दिनम्प्रति।।

-आचार्य गुणभद्र (9 वी शती ई.), उत्तरपुराण, 74/251-52. पृ.460

"जब उसकी आयु छह माह की बाकी रह गई और वह स्वर्ग से आने को उद्यत हुआ तब इसी भरत क्षेत्र के विदेह नाम के देश सम्बन्धी कुण्डपुर नगर के राजा सिद्धार्थ के भवन के आँगन में प्रतिदिन साढ़े सात करोड़ रत्नों की बड़ी मोटी धारा बरसने लगी।"

विदेहविषये कुण्डसंज्ञायां पुरि भूपतिः।।
नाथो नाथकूलस्यैकः सिद्धार्थाख्यस्त्रिसिद्धिभाक्।
तस्य पुण्यानुभावेन प्रियासीत्प्रियकारिणी।। वही, 75/7-8.

"विदेह देश के कुण्ड नगर में नाथवंश के शिरोमणि एवं तीनों सिद्धियों से सम्पन्न राजा सिद्धार्थ राज्य करते थे। पुण्य के प्रभाव से प्रियकारिणी उन्हीं की स्त्री हुई थी।"

4. श्रीमानथेह भरते स्वयमस्ति धात्र्या पुंजीकृतो निज इवाखिलकान्तिसारः।
नाम्ना विदेह इति दिग्वलये समस्ते ख्यातः परः जनपदः पदमुन्नतानाम्।।

तत्रास्त्यधो निखिलवस्त्ववगाहयुक्तं भास्वत्कलाधरबुधैः संवृषं सतारम्।
अध्यासितं वियदिव स्वसमानशोभं ख्यातं पुरं जगति कुण्डपुराभिधानम्।।
उन्मीलितावधिदृशा सहसा विदित्वा तज्जन्म भक्तिभरतः प्रणतोत्तमांगाः।
घण्टा निनाद समवेतनिकायमुख्या दिष्टया ययुस्तदिति कुण्डपुरं सुरेन्द्राः।।

-असग (10 वीं शती ई.), वर्द्धमानचरित, 17/1, 7, 61

''अथानन्तर इसी भरतक्षेत्र में एक ऐसा लक्ष्मी सम्पन्न देश है जो पृथिवी की स्वयं इकट्ठी हुई अपनी समस्त कान्तियों का मानों सार ही है, जो समस्त दिशाओं में विदेह इस नाम से प्रसिद्ध है, तथा उत्तम मनुष्यों के रहने का उत्कृष्ट स्थान है।''

''तदनन्तर उस विदेह देश में कुण्डपुर नाम का एक जगत्-प्रसिद्ध नगर था जो स्वसदृश शोभा से सम्पन्न होता हुआ आकाश के समान सुशोभित हो रहा था, क्योंकि जिस प्रकार आकाश समस्त वस्तुओं के अवगाह से युक्त है, उसी प्रकार वह नगर भी समस्त वस्तुओं के अवगाह से युक्त था। तात्पर्य यह है कि ''आकाशस्यावगाहः'' इस आगम वाक्य से जिस प्रकार आकाश, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्यों को अवगाह देता है, उसी प्रकार वह नगर भी संसार के समस्त पदार्थों को अवगाह देता था- उसमें संसार के समस्त पदार्थ पाये जाते थे। जिस प्रकार आकाश-भास्वत्-सूर्य, कलाधर-चन्द्रमा और बुध ग्रहों से अध्यासित-अधिष्ठित है उसी प्रकार वह नगर भी भास्वत्कलाधर बुधों-दैदीप्यमान कलाओं के धारक विद्वानों से अधिष्ठित था - इस सबका उसमें निवास था। जिस प्रकार आकाश सवृष-वृष राशि से सहित होता है, उसी प्रकार वह नगर भी सवृष-धर्म से सहित था व जिस प्रकार आकाश सतार-ताराओं से सहित है उसी प्रकार वह नगर भी सतार-चाँदी, तरुण पुरुष, शुद्ध मोती अथवा मोतियों आदि की शुद्धि से सहित था।''

''खुले हुए अवधिज्ञान रूपी नेत्र के द्वारा शीघ्र ही जिन बालक का जन्म जानकर भक्ति के भार से जिनके मस्तक झुक गये थे तथा जिनके मुख्य भवन घण्टा के शब्द से शब्दायमान हो रहे थे। ऐसे इन्द्र उस समय सौभाग्य से कुण्डपुर आये।''

5. अथाऽस्मिन् भारते वर्षे विदेहेषु महर्द्धिषु।
आसीत्कुण्डपुरं नाम्ना पुरं सुरपुरोत्तमम्॥

-दामनन्दि (11 वीं शती ई) पुराणसारसंग्रह-2, वर्ध.च.4/1, पृ.188.

"अथानन्तर-इसी भरतक्षेत्र में विदेह नाम का समृद्धि-शाली देश है, वहां देवों के नगरों से भी बढ़कर कुण्डपुर नाम का नगर था।"

6. णिवसइ विदेहु णामेण देसु खयरामरेहिं सुहयर-पएसु।
तहिं णिवसइ कुंडपुराहिहाणु पुरुधय-चय-झंपिवे-तिव्व भाणु॥

-विबुध श्रीधर (12 वीं शती ई.) वड्ढमाण चरिउ, 9/1. पृ 198-99.

"उसी भारतवर्ष में विद्याधरों और अमरों से सुशोभित प्रदेश-वाला विदेह नामक एक सुप्रसिद्ध देश है, जहाँ सुन्दर धार्मिक लोग रहते हैं।"

-------- उसी विदेह देश में कुण्डपुर नामक एक नगर है, जिसने अपनी ध्वजा समूह से तीव्र भानु को ढक दिया था।"

7. चुत्वा विदेहनाथस्य सिद्धार्थस्याङ्.गजोऽजनि।
सोऽत्र कुण्डपुरे शक्रः कृत्वाभिषवणादिकम्॥

-प. आशाधर (13 वीं शती ई), त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र, 24/24 पृ. 153.

"पुष्पोत्तर विमान (स्वर्ग) से च्युत होकर विदेह देश के राजा सिद्धार्थ व प्रियकारिणी के गर्भ से कुण्डपुर में महावीर नाम से जन्में। इन्द्र ने अभिषेकादि कार्य किये।"

8. अथेह भारते क्षेत्रे विदेहाभिध ऊर्जितः।
देशः सद्धर्मसंघाद्यैः विदेह इव राजते॥
इत्यादि वर्णनापेतदेशस्याभ्यन्तरे पुरम्।
राजते कुण्डलाभिख्यं ....॥

-सकलकीर्ति (15 वीं शती ई.), वर्धमान चरित, 7/2, 10.

"इसी भरतक्षेत्र में विदेह नामक शक्तिशाली देश है, जो सद्धर्म और सद्संघ आदि से विदेह की तरह शोभायमान है। इस प्रकार के वर्ण से युक्त देश में "कुण्डलपुर" नामक नगर है।"

9. बहु जनपद मीझार तु वीदेह देस रूपडो ए।
कुंडलपुर सोहि चंग तु पुरुष नामी जीम ए।
ते नयर तणु नाथ तु कासप गोत्र धणी ए।
सीधारथ भूप जाणंतु हरिवंस सिरोमणि ए।।
ते भूप तणी पटरांणी तु नाम प्रियकारिणी ए।

–महाकवि पद्म (16 वीं शती ई.) महावीररास, 14/6, 10, 16 एवं 21.

10. अथेह भरते क्षेत्रे विदेहविषये शुभे।
भूरिपुरादिसंयुक्ते भाति कुण्डपुरं पुरम्।

–मुनिधर्मचन्द्र (17 वीं शती ई.), गौतमचरित्र, 4/1.

"इसी भरतक्षेत्र में एक विदेह देश है जो कि बहुत ही शुभ है और अनेक नगरों से सुशोभित है। उसमें एक कुण्डपुर नाम का नगर है।"

11. अब यह आरजखण्ड महान्, देश सहस बत्तीस प्रमान।
तामें दक्षिण दिस गुणमाल, महा **विदेहा** देश रसाल।।
सो **विदेहवत है** समुदाय, सब शोभा ता कही न जाय।
कोई तप फल के परभाय, उपजें वर **विदेह** में आय।।
ताके मध्य नाभिवत जान, **कुण्डलपुर** नगरी सुख खान।
पुरपति महीपाल मतिमान, श्री सिद्धारथ नाम महान्।
तिनहिं भवन देवी महा, प्रियकारिणी वर नार।।
त्रिशला त्रस रक्षा करण, रूप अधिक परताप।।

–कवि नवलशाह, (18 वीं शती ई.) वर्धमानपुराण, 7/84, 85, 91, 103, 108, 109.

12. समण भगवं महावीरे णाते णातपुत्ते णायकुलविणिव्वते **विदेह विदहदिण्णे विदेहजच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहे त्ति** कट्टु......।

आचारांग, 2/15 सूत्र-746 (ब्यावर संस्करण)

"अर्थात् श्रमण भगवान महावीर, जो कि ज्ञातपुत्र के नाम से प्रसिद्ध हो चुके थे, ज्ञातकुल (के उत्तरदायित्व) से विनिवृत्त थे, अथवा ज्ञात कुलोत्पन्न थे, देहासक्ति रहित थे, विदेहजनों द्वारा अर्चनीय-पूजनीय थे, विदेहदत्ता (माता) के पुत्र थे, विशिष्ट शरीर-वज्रवृषभ-नाराच संहनन एवं समचतुरस्र

संस्थान से युक्त होते हुए भी शरीर से सुकुमार थे। (इस प्रकार की योग्यता से सम्पन्न) भगवान् महावीर तीस वर्ष तक विदेहरूप में गृह में निवास करके -------------।" वही पृ. 377.

13. समणे भगवं महावीरे ------------- नायपुत्ते नायकुलचंदे **विदेहे विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहंसि** ----- कट्टु।

-कल्पसूत्र-सूत्र-110. पृ. 160 (प्राकृत् भारती संस्करण) जयपुर

"श्रमण भगवान महावीर --------- ज्ञातवंश के थे, ज्ञातवंश में चन्द्रमा के समान थे, विदेह थे, विदेहदिन्ना-त्रिशला माता के पुत्र थे, विशिष्ट कान्ति के धारक थे, विशिष्ट देह से अत्यन्त सुकुमार थे। वे तीस वर्ष तक गृहस्थाश्रम में निस्पृह रहकर--------।" वही पृ. 161.

14. (क) अरहा णायपुत्ते भगवं वेसालीए वियाहिए।

-सूत्रकृतांग-1/2/3/22. पृ. 178 (ब्यावर सं.)

"इन्द्रादि देवों द्वारा पूजनीय (अर्हन्त) ज्ञातपुत्र तथा ऐश्वर्यादि गुण युक्त भगवान् वैशालिक महावीर स्वामी ने वैशाली नगरी में कहा था।

(ख) "नायपुत्ते भगवं वेसालिए"

-उत्तराध्ययन सूत्र, 6/18, पृ. 51. वीरायतन संस्करण, 1972.

"ज्ञातपुत्र भगवान वैशालिक (महावीर)।"

चुर्णि-"णातकलप्पसूते सिद्धत्थखत्तियपुत्ते।"

साध्वी चन्दना दर्शनाचार्य ने उक्त संस्करण में उक्त गाथा सूत्र के टिप्पण में पृ. 429 पर लिखा है--"भगवान् महावीर का विशाला अर्थात् वैशाली (उपनगर-कुण्डग्राम) में जन्म होने से उन्हें वेसालिए-वैशालिक कहा जाता है।"

15. अत्थेत्थ भरहवासे, कुण्डग्गामं पुरं गुणसमिद्धं।
तत्थ य नरिन्दवसहो सिद्धत्थो नाम नामेणं।

-विमलसूरि (पहली शती ई.) पउमचरियं, 2/21.

"इसी भरतक्षेत्र में गुण एवं समृद्धि से सम्पन्न कुण्डग्राम नाम का नगर

था। वहाँ पर राजाओं में वृषभ के समान उत्तम सिद्धार्थ नामक राजा राज्य करता था।"

16. सिद्धत्थरायपियकारिणीहिं णयरम्मि **कुंडले** वीरो।
उत्तरफग्गुणिरिक्खे चित्तसियातेरसीए उप्पण्णो।
-यतिवृषभ, (2 री शती ई.), तिलोयपण्णत्ति, 4/549.

"भगवान महावीर कुण्डलपुर में पिता सिद्धार्थ और माता प्रियकारिणी से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न हुए।

17. अह चित्तसुद्धपक्खस्स तेरसीपुव्वरत्तकालम्मि।
हत्थुत्तराहिं जाओ कुंडग्गामे महावीरो।। आवश्यक निर्युक्ति, गाथा-304.

"चैत्रशुक्ल त्रयोदशी को रात्रि के पूर्वभाग में हस्त-उत्तरा नक्षत्र में कुंडग्राम में महावीर उत्पन्न हुए।"

18. अत्थि इह भरहवासे मज्झिमदेसस्स मण्डणं परमं।
सिरिकुण्डगामनयरं वसुमइरमणी तिलयभूयं।। नेमिचन्द्र सूरि, महावीर चरिय.

"इस भारतवर्ष (भरतवर्ष-क्षेत्र) के मध्यम देश का परम आभूषण और पृथ्वी रूपी रमणी का तिलकभूत श्रीकुण्डग्राम नामक नगर है।"

19. कुण्डपुरपुर वरिस्सर सिद्धत्थक्खत्तियस्य णाहकुले।
तिसिलाए देवीए देवीसदसेवमाणाए।।28।।
-वीरसेन (9 वीं ई.) षट्खंडागम (धबला) पु. 9, खण्ड-4, भाग-1 पृ. 122
वही, कसायपाहुड (जयधबला), भाग-1, पृ. 78, गाथा-23.

"कुंडपुर (कुण्डलपुर) रूप उत्तमपुर के ईश्वर सिद्धार्थ क्षत्रिय के नाथ कुल में सैकड़ों देवियों से सेव्यमान त्रिशला देवी के----।"

20. आसाढ़ जोण्हपक्खछट्ठीए कुंडलपुर णगराहित्व-णाहवंस-सिद्धत्थणरिंदस्स तिसिलादेवीए गब्भमागंतूण तत्थ अट्ठदिवसाहिय णावमासे अच्छिय-चइत्तसुक्क-पक्खेतेरसीए उत्तराफग्गुणीणक्खत्ते गब्भादो णिक्खंतो।
-वीरसेन, (9 वीं शती ई.) षट्खण्डागम (धबला), पु 9, ख.4, भाग-1, पृ. 121.
-----**"कुंडपुर"**------वड्ढमाणजिणिंदो--शेष वही।

-वीरसेन (9 वीं शती ई.) कसायपाहुड (जयधवला), भाग-1, पृ. 76-77.

आषाढ़ शुक्ल पक्ष षष्ठी के दिन कुण्डलपुर नगर के अधिपति नाथवंशी सिद्धार्थ नरेन्द्र की त्रिशला देवी के गर्भ में आकर और वहाँ आठ दिन अधिक नौ मास रहकर चैत्र शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में गर्भ से बाहर आये।''

21. इह जंबुदीवि भरहंतरालि। रमणीय-विसइ सोहाविसालि।।
कुंडउरि राउ सिद्धत्थ सहित्थु जो सिरिहरु मम्मण वेस रहिउ।।

-महाकवि पुष्पदंत, (10 वीं शती ई.) वीरजिणिंदचरिउ, 1/6, पृ. 10.

''इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में विशाल शोभाधारी विदेह प्रदेश में कुण्डपुर नगर के राजा सिद्धार्थ राज्य करते हैं। वे आत्म-हितैषी और श्रीधर होते हुए भी विष्णु के समान वामनावतार सम्बधी याचक वेष से रहित हैं।''

उक्त शास्त्रीय उद्धरणों से स्पष्ट है कि भगवान महावीर का जन्म विदेह देश के ''कुण्डपुर'' (कुण्डलपुर या कुण्डग्राम) में हुआ था, जो आज ''वासोकुण्ड'' नाम से जाना जाता है। महावीर का जन्मस्थान होने के कारण ही यहाँ सन् 1955 ई. में बिहार सरकार ने (स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन के आर्थिक सहयोग से) प्राकृत और जैनविद्या के उच्चतर अध्ययन-अनुसन्धान के निमित्त **''प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली''** की स्थापना की थी। संस्थान के भवन तथा जन्म स्थान वासोकुण्ड में महावीर स्मारक का शिलान्यास 23 अप्रैल 1956 को भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने किया था।

देश-विदेश के जैन-जैनेतर विद्वानों ने पिछले एक-डेढ़ सौ वर्षो में भगवान् महावीर के जन्म स्थान के विषय में खूब विचार किया है। उनमें से कतिपय विद्वानों का ससन्दर्भ उल्लेख यहाँ किया जा रहा है--------

विदेशी-विद्वान्

1. हर्मन जैकोबी, सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, जिल्द-22, ऑक्सफोर्ड, 1884; एवं भारत-1964, पृ. 10-13 (जैन सूत्र, प्रथम भाग की भूमिका) तथा इन्सायक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, जिल्द-7 पृ. 466.

2 डा. ए. एफ रूडोल्फ होर्नले, उवासगदसाओ के अंग्रेजी अनुवाद में, बिब्लियोथेका इण्डिका सीरीज, कलकत्ता, 1888. फुटनोट-8, पृ. 3-5.

3. डा. विसेन्ट ए. स्मिथ, जर्नल ऑफ दि रायल एशिएटिक सोसायटी, 1902, पृ. 267-288 तथा इन्साईक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, जिल्द-12, पृ. 567-68, सन् 1921.

4 डॉ. टी. ब्लॉक, एक्सकैवेसन्स एट बसाढ, ऑर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया का वार्षिक विवरण, सन् 1903-4, पृ 81-122

5 श्रीमती सिक्लेयर स्टेवेन्शन, दि हार्ट ऑफ जैनिज्म, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1915, पृ. 21-22

6 डॉ. जाल चार्पेण्टियर, उपसाला विश्वविद्यालय, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, प्रथम भारतीय संस्करण, एस चांद एण्ड कम्पनी, दिल्ली, जिल्द-1, पृ 140 सन् 1955.

7. डॉ डी. पी. स्पूनर, ऑर्कियालॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया का वार्षिक विवरण, सन् 1913-14, पृ. 98-185.

8 जी पी मल्लाल शेखर, डिक्शनरी ऑफ पालिप्रोपर नेम्स, भाग-2, लन्दन, सन् 1938, पृ. 943 तथा भाग-1, पृ 64.

जैनेतर-विद्वान्

1 सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त, ए हिस्टरी ऑफ इण्डियन फिलॉसफी वाल्यूम-1, कैम्ब्रिज, 1922, पृ 173

2 नन्दलाल दे, द ज्याग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ एन्शिएण्ट एण्ड मडिएवल इण्डिया, लदन, 1927, पृ 107

3 बी सी ला, महावीर: हिज लाइफ एण्ड टीचिंग्स, लंदन, 1937 पृ 19, वैशाली अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ 169-72

4. सर्वपल्ली डॉ राधाकृष्णन्, इण्डियन फिलॉसफी, वाल्यूम-1, इण्डियन एडीशन, 1940, पृ 291-92

5 राहुल सांकृत्यायन, दर्शन-दिग्दर्शन, इलाहाबाद, 1944, पृ 492

6 डॉ राधाकुमुद मुकर्जी, 31 मार्च 1945 को प्रथम वैशाली महोत्सव का अध्यक्षीय भाषण, वैशाली अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ 6

7. श्री रामतिवारी, ब्र चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ, आरा, सन् 1954, पृ 666-67

8. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, भारत के प्रथम राष्ट्रपति द्वारा प्राकृत जैन शास्त्र और अहिसा शोध सस्थान के भवन का शिलान्यास करते समय दिया गया भाषण, वैशाली अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 103, प्रथम संस्करण की भूमिका एव महावीर स्मारक लेख, 23 अप्रैल 1956 बासुकुण्ड, वैशाली।

9. श्री रगनाथ रामचन्द्र दिवाकर, राज्यपाल बिहार, 23 अप्रैल 1956 को बारहवें वैशाली महोत्सव क अवसर पर अध्यक्षीय भाषण, वैशाली अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ 116-17

10. डॉ. एस. मुकर्जी, वही, पृ 120.

11. प्रो राधाकृष्ण शर्मा, ब्र. चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 597

12 पं नरोत्तम शास्त्री, वही पृ. 605.

13 डॉ सम्पूर्णानन्द, वैशाली अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ 394

14. योगेन्द्र मिश्र, एन अर्ली हिस्टरी ऑफ वैशाली, दिल्ली, 1962, वैशाली अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 251-59 तथा ब्र. चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 669-76.

15. डॉ. वी. एस. अग्रवाल द्वारा लिखित (श्री विजयेन्द्र सूरि लिखित पुस्तक) की भूमिका एवं वैशाली अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 108.

16. पं. बलदेव उपाध्याय, वैशाली अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. 237-42.

17. टी. एन. रामचन्द्रन्, वही, पृ. 128-33.

18. जे. सी. माथुर, वही, पृ. 387.

19 डॉ. सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, वही, पृ. 398-99.

20. श्री नागेन्द्र प्रसाद सिंह, वही, पृ. 471-72.

22. पं. बिहारी लाल शर्मा, "मंगलायतनम्", संस्कृत गद्य रचना, 2500 वाँ निर्वाण महोत्सव वर्ष 1975 मे वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, वाराणसी से प्रकाशित।

जैन-विद्वान्

1. ब्र. भूरामल शास्त्री (आचार्य ज्ञानसागर) वीरोदय महाकाव्य, दूसरा सर्ग।

2 पं. मूलचन्द शास्त्री, वर्धमान चम्पू।

3. श्री चिमनलाल जे शाह, जैनिज्म इन नॉर्थ इण्डिया (800 बी सी से 526 एडी.) लॉगमेन्स ग्रीन एण्ड कम्पनी, 1932, पृ 23-24।

4 बाबू कामता प्रसाद जैन, "वैशाली" शीर्षक लेख, जैन सिद्धात भास्कर, वर्ष-3, 1936-36, पृ 48-52।

5. जे. एल. जैनी, आउट लाइन्स ऑफ जैनिज्म, कैम्ब्रिज, 1916, रिप्रिन्ट 1940 पृ 27।

6 प. कल्याणविजय गणि, श्रमण भगवान महावीर, शास्त्र सग्रह सतिति, जालोर, 1941 प्रस्तावना, पृ 25-28।

7 प. के भुजबली शास्त्री, "भगवान महावीर की जन्म भूमि" शीर्षक निबन्ध, जैन सिद्धांत भास्कर, 10/2, सन् 1943. पृ. 60'66।

8. विजेन्द्र सूरि, वैशाली (प्रथम एव द्वितीय सस्करण) सन् 1946, 1957, तीर्थकर महावीर, भाग-1, बम्बई, 1960, वैशाली अभिनदन ग्रन्थ, पृ. 160 168 एव 264

9. डॉ. जगदीशचन्द्र जैन, लाईफ इन एन्शिएण्ट इण्डिया एज डिपिक्टेड इन द जैन कैनन्स, बम्बई, 1947, पृ. 297.

10. पं. सुखलाल सघवी, अध्यक्षीय भाषण, नवम वैशाली महोत्सव 28 मार्च 1953, वैशाली अभिनदन ग्रन्थ, पृ. 84-94.

11. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, ब्र. चन्दाबाई अभिनदन ग्रन्थ, आरा 1954, पृ. 626.

12. श्री बी. सी जैन वही, पृ. 688

13. डॉ. हीरालाल, वैशाली अभिनदन ग्रन्थ, पृ. 97-98, प्राकृत जैन शास्त्र और अहिंसा शोध सस्थान वैशाली का कैलेण्डर, सन् 1961, सन् 1992 तथा वीरजिणिंद चरिउ की प्रसतावना।

14. आचार्य श्री हस्तिमल्ल जी महाराज, जैन धर्म का मौलिक इतिहास, पृ 556 (उद्धत शोधादर्श-44, पृ. 59.)।

15. राष्ट्रसत आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज।
16. महासती चन्दना, उत्तराध्ययन सूत्र टिप्पण, वीरायतन संस्करण, 1972, पृ. 429.
17. कैलाशचन्द्र जैन, लॉर्ड महावीर एण्ड हिज टाइम्स, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1974, पृ. 34-37
18. श्री अजित प्रसाद जैन, शोधादर्श-44, पृ. 58-59.
19. डॉ. शशिकान्त, वही, पृ. 17.

उपर्युक्त सभी विद्वानों ने एक स्वर से विदेह देश में मौजूद वैशाली के समीपवर्ती कुण्डपुर (कुण्डलपुर, कुण्डग्राम) वर्तमान वासोकुण्ड को भगवान महावीर का जन्म स्थान माना है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के लोग लिछुआड़ (जो अंग देश में था) को भगवान महावीर की जन्मभूमि मानते हैं, जो शास्त्रीय दृष्टि से मान्य नहीं है। उसी परम्परा के प्रसिद्ध विद्वान् भी लिछुआड़ को भगवान महावीर का जन्म स्थान नहीं मानते। यहाँ दो विशिष्ट विद्वानों के मन्तव्य उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत किये जा रहे हैं :-

श्वेताम्बर विद्वान् पुरातत्ववेत्ता पं. कल्याणविजय गणी का अभिप्राय इस प्रकार है-

"प्रचलित परम्परानुसार आज कल भगवान की जन्मभूमि पूर्व बिहार में क्यूल स्टेशन से पश्चिम की ओर आठ कोस पर अवस्थित लच्छआड़ गाँव माना जाता है पर, हम इसको ठीक नहीं समझते इसके अनेक कारण हैं-

1. सूत्रों में महावीर के लिए "विदेहे विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहं-सिकट्टु" इत्यादि जो वर्णन मिलता है, उससे यह स्वतः सिद्ध होता है कि महावीर विदेह देश में अवतीर्ण हुए और वहीं उनका संवर्द्धन हुआ था। यद्यपि टीकाकारों ने इन शब्दों का अर्थ और ही तरह से लगाया है, पर शब्दों से प्रथमोपस्थित विदेह, विदेहदत्त, विदेहजात्य, विदेहसुकुमाल, तीस वर्ष विदेह में (पूरे) करके, इन अर्थवाले शब्दों पर विचार करने से यही ध्वनित होता है कि भगवान महावीर विदेह जाति के लोगों में उत्तम और सुकुमाल थे। एक जगह तो महावीर को "वैशालिक" भी लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि आपका जन्म स्थान क्षत्रियकुण्डपुर वैशाली का ही एक

विभाग रहा होगा।

2. जबकि भगवान ने राजगृह और वैशाली आदि में बहुत से वर्षों में चातुर्मास किए थे, तब क्षत्रियकुण्डपुर में एक भी वर्षाकाल नहीं बिताया। यदि क्षत्रियकुण्डपुर जहाँ आज माना जाता है, वहीं होता तो भगवान के कतिपय वर्षाकाल भी वहाँ अवश्य ही हुए होते, पर ऐसा नहीं हुआ। वर्षावास तो दूर रहा, दीक्षा लेने के बाद कभी क्षत्रियकुण्डपुर अथवा उसके उद्यान में भगवान के आने-जाने का भी कहीं उल्लेख नहीं है। हाँ, प्रारम्भ में जब आप ब्राह्मणकुण्डपुर के बाहर बहुसालचैत्य में पधारे थे, तब क्षत्रियकुण्डपुर के लोगों का आपकी धर्मसभा आने और जमालि के प्रव्रज्या लेने की बात अवश्य आती है।

भगवान महावीर बहुधा वहीं अधिक ठहरा करते थे जहाँ पर राजवंश के मनुष्यों का आपकी तरफ सद्भाव रहता। राजगृह-नालंदा में चौदह और वैशाली-वाणिज्यग्राम में बारह वर्षावास होने का यही कारण था कि वहाँ के राजकर्त्ताओं की आपकी तरफ अनन्य भक्ति थी। क्षत्रियकुण्डपुर के राजपुत्र जमालि ने अपनी जाति के पाँच सौ राजपुत्रों के साथ निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या ली थी। इससे भी इतना तो सिद्ध होता है कि क्षत्रियकुण्डपुर, जहाँ से कि एक साथ पाँच सौ राजपुत्र निकले थे, कोई बड़ा नगर रहा होगां तब क्या कारण है कि महावीर ने एक वर्षावास अपने जन्मस्थान में नहीं किया? इसका उत्तर यही है कि क्षत्रियकुण्डपुर वैशाली का ही एक उपनगर था और वैशाली-वाणिज्यग्राम में बारह वर्षावास-चातुर्मास हुए ही थे, जिनसे क्षत्रिय कुण्ड और ब्रह ब्राह्मणकुण्ड के निवासियों को भी पर्याप्त लाभ मिल चुका था। इस क्षत्रियकुण्ड में आने अथवा वर्षावास करने सम्बन्धी उल्लेखों का न होना अस्वाभाविक नहीं है।

3. भगवान् की दीक्षा के दूसरे दिन कोल्लाकसंनिवेश में पारणा करने का उल्लेख है। जैन सूत्रों के अनुसार कोल्लाकसंनिवेश दो थे- एक वाणिज्यगांव के निकट और दूसरा राजगृह के समीप। यदि भगवान का जन्मस्थान आजकल का क्षत्रियकुण्ड होता तो दूसरे दिन कोल्लाक में पारणा होना असम्भव था, क्योंकि राजगृहवाला कोल्लाकसंनिवेश वहां से कोई चालीस मील दूर पश्चिम

में पड़ता था और वाणिज्यग्रामवाला कोल्लाक इससे भी बहुत दूर। इससे यही मानना तर्कसंगत होगा कि भगवान् ने वैशाली के निकटवर्ती क्षत्रियकुण्ड के ज्ञातखण्ड वन में प्रव्रज्या ली और दूसरे दिन वाणिज्यग्राम के समीपवर्ती कोल्लाक में पारणा की।

4. क्षत्रियकुण्ड में दीक्षा लेकर भगवान् ने कर्मारग्राम, कोल्लाकसंनिवेश आदि में विचर कर अस्थिकग्राम में वर्षा-चातुर्मास के बाद भी मोराक, वाचाला, कनकखल, आश्रमपद और श्वेताविका आदि स्थानों में विचरण के उपरान्त राजगृह की तरफ प्रवास किया और दूसरा वर्षावास राजगृह में किया था।

उक्तविहार-वर्णन में दो मुद्दे ऐसे हैं जो आधुनिक क्षत्रियकुण्ड असली क्षत्रियकुण्ड नहीं है, ऐसा सिद्ध करते हैं। एक तो भगवान् प्रथम चातुर्मास के बाद श्वेताविका नगरी की तरफ जाते हैं और दूसरा यह कि उधर विहार करने के बाद आप गंगानदी उतर कर राजगृह जाते हैं।

श्वेताविका श्रावस्ती से कपिलवस्तु की तरफ जाते समय मार्ग में पड़ती थी। यह भूमि-प्रदेश कौशल के पूर्वोत्तर में और विदेह के पश्चिम में पड़ता था और वहाँ से राजगृह की तरफ जाते समय बीच में गंगा पार करनी पड़ती थी, यह भी निश्चित है। आधुनिक क्षत्रियकुण्डपुर के आस-पास न तो श्वेताविका नगरी थी और न उधर से राजगृह जाते समय गंगा ही पार करनी पड़ती थी। इससे ज्ञात होता है कि भगवान् की जन्मभूमि आधुनिक क्षत्रियकुण्ड जो आजकल पूर्व बिहार में गिद्धौर स्टेट में और पूर्वकालीन प्रादेशिक सीमानुसार अंग देश में पड़ता है, नहीं हैं, किन्तु गंगा से उत्तर की ओर उत्तर बिहार में कहीं थी और वह स्थान पूर्वोक्त प्रमाणों के अनुसार वैशाली के निकटवर्ती क्षत्रिय-कुण्ड ही हो सकता है। (जैन सिद्धांत भास्कर, 10/2, सन् 1943, पृ. 63-65. उद्धृत - पं. के. भुजबली शास्त्री, भगवान महावीर की जन्मभूमि)।

स्व. आचार्य विजयेन्द्रसूरि ने अपनी पुस्तक "वैशाली" में भगवान महावीर के जन्मस्थान के विषय में जो निष्कर्ष निकाले, वे यथावत् रूप में इस प्रकार हैं-

''अब हम संक्षेप में इस परिणाम पर पहुँचते हैं----

1. आधुनिक स्थान जिसे क्षत्रियकुण्ड कहा जाता है और जिसे लिच्छुआड़ के पास बताया जाता है, मुंगेर जिला के अन्तर्गत है, महाभारत में इस प्रदेश को एक स्वतंत्र राज्य ''मोदगिरि'' के नाम से उल्लेख किया गया है, जो कि बाद में अंग देश से मिला दिया गया था अर्थात् प्राचीन ऐतिहासिक युग में यह स्थान विदेह में न होकर अंग देश अथवा मोदगिरि-अन्तर्गत था। इसलिए भगवान की जन्मभूमि यह स्थान नहीं हो सकती।

2. आधुनिक क्षत्रियकुण्ड पर्वत पर है, जबकि प्राचीन क्षत्रियकुण्ड के साथ शास्त्रों में पर्वत का कोई वर्णन नहीं मिलता। वैशाली के आस-पास क्योंकि पहाड़ नहीं है, इसलिए भी वही स्थान भगवान का जन्मस्थान अधिक सम्भव प्रतीत होता है।

3. आधुनिक क्षत्रियकुण्ड की तलहटी में एक नाला बहता है, जो कि गण्डकी नहीं है। गण्डकी नदी आज वैशाली के पास बहती है।

4. शास्त्रों में क्षत्रियकुण्ड को वैशाली के निकट बताया है, जबकि आधुनिक स्थान के निकट वैशाली नहीं है।

5. विदेह देश तो गंगा के उत्तर में है, जबकि आधुनिक क्षत्रियकुण्ड गंगा के दक्षिण में है।

इससे स्पष्ट है कि भ्रांतिवश लिच्छआड़ के निकट पर्वत के ऊपर के स्थान को क्षत्रियकुण्ड मान लिया गया है। यहाँ भगवान का कोई भी कल्याणक-गर्भ, जन्म और दीक्षा नहीं हुआ।

शास्त्रों के अनुसार हमारी यह सम्मति है कि जो स्थान आजकल बसाढ़ नाम से प्रसिद्ध है, वही प्राचीन वैशाली है। इसी के निकट क्षत्रियकुण्ड ग्राम था, जहाँ भगवान के तीन कल्याणक हुए थे। इसी स्थान के निकट आज भी वणियागाँव, कूमनछपरागाछी और कोल्हुआ मौजूद हैं। आजकल यह क्षत्रियकुण्ड स्थान वासुकुण्ड नाम से प्रसिद्ध है। पुरातत्व विभाग भी वासुकुण्ड को ही प्राचीन क्षत्रियकुण्ड मानता है। यहाँ के स्थानीय लोग भी यही समझते हैं कि

भगवान का जन्म यहीं हुआ था।

(श्रमण-2001. मे प्रकाशित "वैशाली" नामक लेख, पृ. 46-47.)

पं. कल्याणविजय गणि और **आचार्य विजयेन्द्र सूरि** जी महाराज के उपर्युक्त निष्कर्ष से यह स्पष्ट है कि भगवान महावीर का जन्म विदेह देशस्थ कुण्डपुर, जो वैशाली के समीप है, में हुआ था, लिछुआड़ (मुंगेर-अंगदेश) या कुण्डपुर (नालन्दा-मगध) देश में नहीं।

जैन, बौद्ध और **वैदिक** परम्परा के शास्त्रों में **अंग, मगध** और **विदेह** स्वतन्त्र देश बतलाये गये हैं। बृहत्कल्पसूत्र वृत्ति, प्रज्ञापनासूत्र, सूत्रकृतांग, टीका, प्रवचनसारोद्वार आदि में जिन आर्य देशों का उल्लेख है, उनमें अंग, मगध और विदेह की भी गणना है। बौद्धग्रन्थों में उल्लिखित सोलह महाजनपदों में भी इनका नामोल्लेख पाया जाता है। आदिपुराण में भी इनका पृथक्-पृथक् उल्लेख है। अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन समय में ये तीनों स्वतन्त्र देश रहे हैं। वर्तमान बिहार अंग, मगध और विदेह इन तीनों प्राचीन देशों का संयुक्त रूप है, केवल विदेह का नहीं। यहाँ उक्त तीनों देशों (जनपदों) की सीमाओं के विषय में विचार करते हैं।

अंग जनपद की सीमाओं के विषय में डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री का यह कथन दृष्टव्य है- "चम्पेय जातक (506) के अनुसार चम्पानदी अंग-मगध की विभाजक प्राकृतिक सीमा थी, जिसके पूर्व और पश्चिम में यह दोनों जनपद बसे हुए थे। अंग जनपद की पूर्वी सीमा राजमहल की पहाड़ियाँ, उत्तरी सीमा कोसी नदी और दक्षिण में उसका समुद्र तक विस्तार था।" (आदिपुराण मे प्रतिपादित भारत, पृ. 44-45) अत: अंग देश का विस्तार पूर्व में राजमहल की पहाड़ियों तक, पश्चिम में चम्पा नदी तक, उत्तर में कोयी नदी तक और दक्षिण में समुद्र तक था।

प्राचीन काल में मगध देश गंगा नदी के दक्षिण में वाराणसी से मुंगेर तक फैला हुआ था, इसकी दक्षिणी सीमा दामोदर (दमूद) नदी के उद्गम स्थान कर्णसुवर्ण (सिंहभूम) तक मानी जाती थी। बौद्धकाल में मगध की सीमा पूर्व में चम्पा नदी, पश्चिम में शोण (सोन) नदी, उत्तर में गंगा नदी और दक्षिण

में विन्ध्य पर्वतमाला थी। (डिक्शनरी ऑफ पालिप्रोपर नेम्स, भाग-2, पृ. 403 एवं प्राड. मौर्य बिहार, पृ. 78)

मगध देश के सीमा विस्तार के सम्बन्ध में शक्ति संगम तन्त्र में इस प्रकार कहा है-

कालेश्वरं समारभ्य तप्तकुण्डान्तकं शिवे।
मगधाख्यो कालेश्वर-कालभैरव-नहि दुष्यर्ति।। 3-7-10.

अर्थात् कालेश्वर-कालभैरव-वाराणसी से लेकर तप्तकुण्ड-सीताकुण्ड-मुंगेर तक मगध नामक महादेश माना गया है।

ह्युयान्-त्संग के अनुसार, मगध जनपद की मण्डलाकार परिधि 833 मील थी। इसके उत्तर में गंगा नदी, पश्चिम में वाराणसी, पूर्व में हिरण्य पर्वत और दक्षिण में सिंहभूमि वर्तमान थी। ऋग्वेद और महाभारत में मगध को कीकट कहा गया है। शक्ति संगम के अनुसार मगध के दक्षिण में कीकट देश था।

विदेह देश के विस्तार के सम्बन्ध में शक्ति संगम तन्त्र के सुन्दरी खण्ड में इस प्रकार कहा गया है-

गण्डकीतीरमारभ्य चम्पारण्यान्तकं शिवे।
विदेहभूः समाख्याता तैरभुक्त्यभिया तु सा।।

अर्थात् तीरभक्ति कही जाने वाली विदेहभूमि गण्डकी (गण्डक नदी) के तीर से लेकर चम्पारण की अन्तिम सीमा तक फैली हुई है।

"शक्ति-संगम-तंन्त्र" के ही प्रसंग से "बिहार थ्रो द एजेज" पृ. 55 पर लिखा है- "फ्रॉम द बैन्क ऑफ गण्डक टू द फॉरेस्ट ऑफ चम्पारण द कन्ट्री वाज कॉल्ड, विदेह ऑर तीरभुक्ति, **इट वाज बाउन्डेड ऑन ईस्ट, वैस्ट एण्ड साउथ बाई थ्री बिग रिवर्स, द कोसी, गण्डक एण्ड गंगाज, वाइल द तराई रीजन्स फॉर्मड् इट्स नॉर्दर्न, बाउन्डरी,**" अर्थात् गण्डक नदी के तट से लेकर चम्पारण पर्यन्त का स्थान विदेह अथवा तीरभुक्ति कहा जाता था। उसके पूर्व, पश्चिम और दक्षिण में कोसी, गण्डक तथा गंगा-ये तीन बड़ी नदियाँ हैं और हिमालय का त्रराई क्षेत्र इसके उत्तर की ओर है।

बृहद्विष्णु पुराण में विदेह के तीरभुक्ति तथा मिथिला आदि बारह नाम

कहे गये हैं। इनमें से तीरभुक्ति या तिरहुत आज भी प्रसिद्ध है, इसी नाम से प्रमण्डल भी बना हुआ है। विदेह की सीमा के सूचक बृहद्विष्णु पुराण के मूलपद्य इस प्रकार हैं-

"गंगाहिमवतोर्मध्ये नदी पंचदशान्तरे।
तैरभुक्तिरिति ख्यातो देशः परमपावनः।।
कौशिकीं तु समारभ्य गण्डकीमधिगम्य वे।
योजनानि चतुर्विंशत् व्यायामः परिकीर्तितः।।
गंगाप्रवाहमारभ्य यावद्धैमवतं वनम्।
विस्तारः षोडषटः प्रोक्तो देशस्य कुलनन्दनः।।
मिथिला नाम नगरी तत्रास्ते लोकविश्रुता।
पंचभिः कारणैः पुण्या विख्याता जगतीत्रये।।" बृहद्विष्णुपुराण मिथिलामाहात्म्य, 2/ 10-12

अर्थात् गंगा नदी और हिमालय पर्वत के मध्य पन्द्रह नदियों वाला परमपवित्र तीरभुक्ति (विदेह) नामक देश है। कौशिकी (कोशी) से लेकर गण्डकी (गण्डक) तक विदेह की पूर्व से पश्चिम तक की सीमा 24 योजन (96 कोस) है। गंगा नदी से लेकर हैमवत वन (हिमालय) तक चौड़ाई 16 योजन (64 कोस) है। ऐसे विदेह अथवा तीरभुक्ति देश में तीनों लोकों के विख्यात पाँच कारणों से पुण्यशाली मिथिला नाम की नगरी है।

सम्राट् अकबर द्वारा महामहोपाध्याय मिथिलेश पंडित महेश ठाकुर के दान-पत्र में भी मिथिला की सह-सीमा गंगा से हिमालय तथा कोशी और गण्डकी नदी के बीच बताई गई है। मूल उद्धरण इस प्रकार है-" अज गंग ता संग अज कोसी ता गोसी"। (प क भुजबली शास्त्री, जैन सिद्धात भास्कर, 10/2 पृ 62, सन् 1943)

आचार्य विजयेन्द्र सूरि ने "वैशाली" नामक अपनी पुस्तक में उक्त उद्धरण दिया है, जिससे स्पष्ट होता है कि विदेह देश गंगा नदी से उत्तर दिशा में था- "गंगाया उत्तरतः विदेहदेशः। देशोऽयं वेदोपनिषत्पुराणगीयमानानां जनकाना राज्यम्। अस्यैव नामान्तरं मिथिला। राज्यस्य राज-धान्यपि मिथिलैव नामधेय बभूव।" (भारत-भूगोल, पृ 37)

इनके अतिरिक्त प्रो. उपेन्द्र ठाकुर, प्रो. कृष्णकान्त मिश्र, भवानी शंकर

त्रिवेदी, डॉ. देव सहाय त्रिवेद, डॉ. सावित्री सक्सेना आदि विद्वानों ने भी विदेह की उक्त सीमा को ही मान्य किया है।

यहाँ यह ध्यातव्य है वर्त्तमान बिहार केवल प्राचीन विदेह का पर्याय नहीं है, बल्कि अंग, मगध और विदेह, तीनों का संयुक्त रूप है। इनमें मगध और विदेह की विभाजक नदी गंगा नदी, अंग और मगध की विभाजक चम्पा नदी तथा अंग और विदेह की विभाजक कोशी नदी थी और इनकी भौगोलिक स्थिति प्रायः आज भी वैसी ही है। इसलिए इस भ्रांति से बचने की जरूरत है कि प्राचीन विदेह ही आज का बिहार राज्य है।

उपर्युक्त शास्त्रीय उद्धरणों, विद्वानों के विमर्श एवं मन्तव्यों, अंग, मगध और विदेह देशों (जनपदों) के सीमा सम्बन्धी विवरणों से स्पष्ट है कि भगवान महावीर का जन्म विदेह देश के कुण्डपुर (कुण्डलपुर या कुण्डग्राम) में हुआ था, जो इस समय वासुकुण्ड या वासोकुण्ड नाम से प्रसिद्ध है तथा मुजफ्फरपुर जिले के सरैया प्रखण्ड में है। यहाँ से प्राचीन वैशाली (बसाढ़) लगभग पाँच किलोमीटर की दूरी पर है। लिछुआड़ का समीपवर्त्ती क्षत्रियकुण्ड, जो मुंगेर जिले में है, तथा कुण्डलपुर (नालन्दा) भगवान महावीर का जन्मस्थान नहीं हैं, क्योंकि ये क्रमशः अंग और मगध देश में मौजूद हैं। समाज तो श्रद्धालु होता है, इसलिए विद्वानों, साधु संस्थाओं, समाज के नेतृत्त्व वर्ग से यह अपेक्षित है कि वह उसे भ्रम में न डालें। यदि पहले से समाज में कोई गलत धारणा बनी हुई है तो उसके विषय में उसे सावधान करें। मेरे इस लेख का उद्देश्य किसी की श्रद्धा को प्रभावित करना नहीं है, बल्कि समाज को यथार्थ की जानकारी देना है। अनेकान्तवादी जैन-दर्शन में आग्रह के लिए स्थान नहीं है।

-प्राध्यापक, प्राकृत और जैनशास्त्र,
प्राकृत, जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान
वैशाली (बिहार) - 844128.

आचार्य जिनसेन की दृष्टि में भोगवाद के दुष्परिणाम

-डॉ. सूरज मुखी जैन

आज विश्व में भोगवाद का बोलबाला है, मानव अधिकाधिक भोग सामग्री की प्राप्ति के लिये उचित-अनुचित किसी भी प्रकार धनार्जन करने की चिन्ता से प्रतिक्षण व्याकुल रहता है। रात-दिन ऊपरी दिखावा और ऐशो-आराम की सामग्री जुटाने की आपाधापी में उसके हृदय से पारस्परिक स्नेह, सौहार्द एवं सहानुभूति की सुखद भावनाएं लुप्त हो गयी है। अटूट धन सम्पत्ति की लालसा ने अपनों को पराया बना दिया है। धर्मप्राण भारत में खून की नदियां बह रही हैं। भाई-भाई के पिता-पुत्र के, पुत्र-पिता के, बेटा-मां के और मां-बेटे के खून से अपने हाथ रंग रहे है। गौ हमारी माता है, किन्तु आज धन प्राप्ति के लिये प्रतिदिन लाखों गायों की हत्या कर मांस का निर्यात किया जा रहा है। देश में नित्य नये कत्लखाने खुल रहे हैं, जहाँ अत्यन्त निर्दयता के साथ लाखों मूक पशुओं का वध किया जा रहा है। मांसाहार की प्रवृत्ति बढ़ रही है। सिल्क के कपड़े, चमड़े के जूते चप्पल, सुगन्धित इत्र तेल साबुन तथा सौन्दर्य-प्रसाधन की अन्य अनेक वस्तुओं की प्राप्ति के लिये अनेक निर्दोष प्राणियों को हत्या कर हम अपनी अमानवीय इच्छाओं की पूर्ति करने का प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु 'ज्यों-ज्यों दवा की, मर्ज बढ़ता ही गया, की उक्ति चरितार्थ हो रही है। आज संसारिक दृष्टि से भी कोई व्यक्ति सुखी और सन्तुष्ट नहीं दिखाई देता। हमारे ऋषि-महार्षियों ने 'सन्तोष एव सुखस्य परं निधानं' कहकर हमें स्पष्ट निर्देश दिया है कि सुख का कारण भोगों का भोग नहीं अपितु सन्तोष है।

आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण में भोगवाद के दुष्परिणाम को दिखाते हुए कहा है-

प्रथम तो विषयों को एकत्र करने में जीव को महान् कष्ट होता है, किसी प्रकार वह एकत्र भी हो जाय तो उसकी रक्षा की चिन्ता से जीव दुखी रहता है और उसके आर्त्त परिणाम रहते हैं। यदि संचित किया हुआ धन या विषय सामग्री दुर्भाग्य से चोरी हों जाय या डकैती हो जाय अथवा अन्य किसी प्राकृतिक प्रकोप

के कारण नष्ट हो जाय तो असह्य दुःख होता है और पहले भोगे हुए विषयों को बार-बार स्मरण कर जीव दुखी होता रहता है। जिस प्रकार ईंधन से अग्नि की तृप्ति नहीं होती, नदियों के पूर से समुद्र की तृष्णा नहीं मिटती, उसी प्रकार विषयों के भोग से जीव को कभी तृप्ति नहीं होती। जैसे खारा जल पीकर मनुष्य की प्यास और अधिक बढ़ जाती है वैसे ही विषयों के भोग से मनुष्य की तृष्णा भी अधिक बढ़ जाती है।[1]

एक-एक इन्द्रिय की आधीनता के कारण होनेवाली जीव की दुर्दशा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि वनों में बड़े-बड़े जंगली हाथी जो अपने समूह के स्वामी होते हैं तथा अत्यन्त मदोन्मत्त रहते हैं, वे भी हथिनी के स्पर्श से मोहित होकर गड्ढ़ों में फंस कर दुःखी होते देखे जाते हैं। विकसित कमलों से युक्त अत्यन्त स्वादिष्ट जलवाले तालाब में अपनी इच्छानुसार विहार करने वाली मछली रसना इन्द्रिय के वश में होकर बंसी में लगे हुए मांस की लालसा से अपने प्राण गंवा देती है। घ्राण इन्द्रिय के वश में होकर मदोन्मत्त हाथियों के मद की वास को ग्रहण करने वाला भौंरा गुंजार करता हुआ हाथियों के कर्णरूपी पंखों के प्रहार से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। वायु से हिलती हुई दीपक की शिखा पर पड़कर चक्षु इन्द्रिय की आधीनता के कारण पंतगे की मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार अपनी इच्छानुसार जंगलों में विचर कर कोमल-कोमल स्वादिष्ट तृणों के अंकुर को चरनेवाली हरिणियां शिकारी के मधुर गीतों की ध्वनि से आकृष्ट होकर काल का ग्रास बन जाती हैं। जब एक-एक इन्द्रिय के विषय का सेवन अनेक दुःखों का कारण है तब पांचों इन्द्रियों के विषयों में आसक्त प्राणी का तो कहना ही क्या है।[2]

पुनः आचार्य कहते हैं कि जो औषधि रोग को जड़ से दूर न कर सके, वह औषधि औषधि नहीं है, जो जल प्यास को न बुझा सके, वह जल जल नहीं है, जो धन आपत्ति को दूर न कर सके, वह धन धन नहीं है, इसी प्रकार विषयभोग से प्राप्त जो सुख विषयों की इच्छा को नष्ट न कर सके, वह सुख नहीं सुखाभास ही है।[3] जिस प्रकार विकारयुक्त घाव होने पर उसे शस्त्र आदि से चीरने का उपचार किया जाता है, उसी प्रकार विषयों की चाह रूपी रोग के उत्पन्न होने पर उसे दूर करने के लिये विषयसेवन किया जाता है, वह विषय सेवन सुख का कारण नहीं है, केवल इच्छारूपी रोग का प्रतीकार है।[4] जिस प्रकार खाज खुजलाते

समय सुख का अनुभव होता है, किन्तु बाद में दाह बढ़ जाने से कष्ट ही होता है, उसी प्रकार विषय-भोगों को भोगते समय तो सुख का अनुभव होता है किन्तु तृष्णा की वृद्धि होते रहने से अन्तत: वह दु:ख का ही कारण होता है।[5] जले हुए घाव पर गीले चन्दन का लेप कुछ समय आराम देता है किन्तु फोड़े के अन्दर का विकार दूर नहीं होने पर चन्दन का लेप स्थायी आराम नहीं देता, उसी प्रकार विषयी जीव को विषयसेवन करते समय सुख का आभास होता है किन्तु विषयों की चाहरूपी रोग के रहते हुए उसे स्थायी सुख नहीं मिलता।[6] दांतों से सूखी हड्डी चबाने वाले कुत्ते को रसास्वादन का कोई आनन्द नहीं मिलता, फिर भी वह हड्डी को चबाता रहता है उसी प्रकार विषयसेवन करने वाले की कभी सन्तुष्टि नहीं होती, फिर भी वह विषय सेवन में संलग्न रहता है और अपने को सुखी मानता है।[7]

अत: समस्त अनर्थपरम्परा को विषय भोगों से उत्पन्न हुआ जानकर तीव्र दु:ख देने वाली विषयों से राग को त्याग देना चाहिये।[8]

परद्रव्यों से प्राप्त होने वाला सुख सच्चा सुख नहीं है अपनी आत्मा से प्राप्त होनेवाला सुख ही नित्य, अविनाशी और सच्चा सुख है।[9] भोगों के भोग से प्राप्त होने वाला सुख पराधीन है उसमें अनेक बाधाएं उत्पन्न होती रहती हैं, बीच--बीच में व्यवधान उपस्थित होता रहता है और वह कर्मबन्ध का भी कारण है। अत: वह सुख, सुख न होकर दु:ख ही है।[10] बुद्धिमान् लोग उसी सुख को चाहते हैं, जिसमें चित्त सन्तुष्ट हो जाय, विषयासक्त जनों का चित सदैव विषय प्राप्ति के लिये व्याकुल रहता है। अत: वे कभी सुखी नहीं हो सकते।[11]

आज के भोगवादी मानव को भी सुख प्राप्ति के लिये अपने प्राचीन ऋषि-महार्षियों तथा आचार्यो द्वारा प्रतिपादित भोगों के दुपरिणाम को समझ कर अपनी असीमित इच्छाओं को नियमित कर भगवान महावीर के 'जियो और जीने दो' के आदर्श को ही अपनाना होगा अन्यथा सुखप्राप्ति के हेतु किये गये उसके सभी प्रयास निष्फल ही सिद्ध होंगे।

सन्दर्भ 1. आचार्य जिनसेन आदिपुराण 11/182, 183, 186, 2. वही 11/187 से 203 तक
3 आचार्य जिनसेन, आदिपुराण 11/168, 168, 4. वही 11/176, 5. वही 11/178, 6. वही 11/175
7 वही 11/185, 8. वही 11/211, 9. वही 21/208, 10 आचार्य जिनसेन आदिपुराण 11/173
11. वही 11/172

आचार्य श्री विद्यासागर कृत ''मूकमाटी'' में अभिव्यक्त -समाजवादी विचार-

-डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन ''भारती''

श्रमण सन्त परम्परा के जाज्वल्यमान नक्षत्र आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज कृत ''मूकमाटी'' महाकाव्य एक महाकृति ही नहीं, बल्कि धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विचारों का ऐसा बीजक है जिसे वर्तमान में जिया जा सकता है, भविष्य में परखा जा सकता है और अतीत से जोड़ा जा सकता है। सन्त सहज होते हैं और उनका जीवन सहजता का प्रतिबिम्ब। वे न तो कानों सुनी कहते हैं न आँखों देखी बल्कि जिसे भोगा है, अनुभव किया है तथा शास्त्र और तर्क की कसौटी पर कसकर देखा है, उसे ही कहते हैं। इसीलिए उनके विचारों में गंगा जैसी ही नहीं, वरन् गंगोत्री जैसी पावनता होती है। ''मूकमाटी'' में माटी मूक नहीं होती बल्कि सम्पूर्ण रूप से मुखरित होती है। वह जन के मन को छूती है ओर तन को पावनता के चरम तक ले जाने की प्रेरक बन जाती है। व्यष्टि में समष्टि और समष्टि में व्यष्टि की कल्पना को सार्थक आयाम देती है। ''मूकमाटी'' में समाजवादी विचार यत्र-तत्र प्रसंगवश बिखरे हुए हैं, जिनकी सुरभि से आप भी सुरभित हो सकते हैं। ''मूकमाटी'' में व्यक्त समाजवादी विचारों पर दृष्टि डालने से पूर्व हमें उसके शब्दगत यथार्थ को समझना चाहिए। ''समाजवाद'' दो शब्दों से मिलकर बना है ''समाज'' और ''वाद''। ''वाद'' का तात्पर्य है विचार या विचारधारा। अर्थात् ऐसी विचारधारा जिसका लक्ष्य समाज हित हो। ''समाजवाद'' के लिए अंग्रेजी भाषा में ''सोशलिज्म'' का प्रयोग किया जाता है जिसकी उत्पत्ति ''सोशियस'' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ ''समाज'' होता है। अर्थात् इसका लक्ष्य भी समाज ही है। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री एफ. एच. गिडिंग्स का कथन है कि- ''समाज स्वयं एक संघ है, संगठन है, औपचारिक सम्बन्धों का एक ऐसा योग है, जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति परस्पर सम्बन्धों द्वारा जुड़े रहते हैं। [1]

एच. पी. फेअर-चाइल्ड के अनुसार- "समाज मनुष्यों का एक समूह है जो अपने कई हितों की पूर्ति के लिए परस्पर सहयोग करते हैं, अनिवार्य रूप से स्वयं को बनाये रखने व स्वयं की निरन्तरता के लिए।[2]"

समाजवादी विचार उक्त समाज के लिए जन्मा जिसे समाज हित को सर्वोपरि माना। सन् 1827 ई. में प्रारम्भ हुआ यह शब्द आज एक विचारधारा बन चुका है और इसे व्यक्तिवाद, वर्गवाद के विरुद्ध प्रयुक्त किया जाता है। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के अनुसार-

"समाजवादी समाज एक ऐसा वर्गहीन समाज होगा जिसमें सब श्रमजीवी होंगे। इस समाज में वैयक्तिक सम्पत्ति के हित के लिए मनुष्य के श्रम का शोषण नहीं होगा। इस समाज की सारी सम्पत्ति सच्चें अर्थो में राष्ट्रीय अथवा सार्वजनिक सम्पत्ति होगी तथा अनर्जित आय और आय सम्बंधी भीषण असमानतायें सदैव के लिए समाप्त हो जायेंगी। ऐसे समाज में मानव जीवन तथा उसकी प्रगति योजनाबद्ध होगी और सब लोग सबके हित के लिए जीयेंगे।[3]"

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज "समाजवाद" को विभिन्न दृष्टिकोणो से "मूकमाटी में रखते हैं; उनकी दृष्टि में यह-

"अमीरों की नहीं
गरीबों की बात है
कोठी की नहीं
कुटिया की बात है।[4]"

अमीरी-गरीबी की खाई को चौड़ा करना समाजवाद नहीं, बल्कि समाजवाद तो इस खाई को पाटने में है। पीड़ा के अन्त से ही सुख का प्रारम्भ हो सकता है-

"पीड़ा की इति ही
सुख का अर्थ है।[5]"

चार वर्णों में समाज विभक्त है यथा-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। प्रारम्भ में यह व्यवस्था कर्मणा थी। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि-

"कम्मुणा बम्भणो होई कम्मुणा होई खत्तिओ।

वइस्सो कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा।[6]''

अर्थात् मनुष्य कर्म से ब्राह्मण होता है कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र होता है।

किन्तु आज वर्ग व्यवस्था जन्मत: मान लेने से श्रेष्ठता के मायने भी बदल गये हैं। दलित-सवर्ण संघर्ष तथा भेदभाव के मूल में यही भावना है। आचार्य श्री ''वर्ण को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं कि-

''वर्ण का आशय
न रंग से है
न ही अंग से
वरन्
चाल-चरण, ढंग से है।[7]''

अर्थात् वर्ण का तात्पर्य न रंग से है और न ही शरीर से अपितु आचरण और जीवन पद्धति से है।

कर्मणा जीवन पद्धति को स्वीकारने वाला व्यक्ति दुखों से दूर रहता है। आचार्य श्री के अनुसार यदि गम (दु:ख) से डर हो तो श्रम से प्रेम करो-

''गम से यदि भीति हो
तो --- सुनो
श्रम से प्रीति करो।[8]''

श्रमशील व्यक्ति न तो किसी पर बोझ बनता है और न ही किसी पर अन्याय करता है। वह व्यष्टि के सुख में सुख नहीं, बल्कि समष्टि के सुख में सुख मानता है। ''वाद'' के पीछे मान होता है जो व्यक्ति को व्यक्ति से अलग कर देता है। आचार्य श्री का मानना है कि-

''पृथक्वाद का आविर्भाव होना
मान का ही फलदान है।[9]''

यह सही है। मनुष्य बनने के लिए संयमी होना आवश्यक है-

''संयम के बिना आदमी नहीं
यानी

आदमी वहीं है
जो यथा-योग्य
सही-आ---दमी है।[10]"

आज व्यक्ति की प्रवृत्तियाँ बदल गयी हैं, उसके लक्ष्य बदल गए हैं, उसके सोच में परिवर्तन हुआ है; स्थिति यहाँ तक आ गयी कि उसे दूसरों के दु:ख देखकर करुणा तो दूर, दर्द भी नहीं उभरता। ऐसे लोगों को पाषाण हृदय की संज्ञा देते हुए आचार्य श्री कहते हैं कि-

"मैं तुम्हें हृदय शून्य तो नहीं कहूँगा
परन्तु
पाषाण-हृदय अवश्य है तुम्हारा
दूसरों का दु:ख दर्द
देखकर भी
नहीं आ सकता कभी
जिसे पसीना
है ऐसा तुम्हारा
-----सीना।[11]"

व्यक्ति बुरा नहीं होता बुरे होते हैं उसके विचार। अत: विचारों को बदलना नितान्त आवश्यक है। लोक में प्रसिद्ध है कि "भावना भवनाशिनी" अर्थात् भावना संसार का नाश करने वाली होती है। सन्त, महर्षि, मुनि आदि सदा से इसी बात को कहते आए हैं-

"फिर भी
ऋषि-सन्तों का
सदुपदेश-सदोदश
हमें यही मिला कि
पापी से नहीं
पाप से,
पंकज से नहीं
पंक से

घृणा करो।
अयि आर्य!
नर से
नारायण बनो
समयोचित कर कार्य।[12]

अर्थात् ऋषि-सन्तों का सदा यही आदेशात्मक उपदेश मिला है कि पापी से नहीं, पाप से घृणा करो। पंकज (कमल) से नहीं बल्कि पंक (कीचड़) से घृणा करो। हे आर्य! (श्रेष्ठ पुरुष)। तुम समयोचित कार्य कर नर नारायण बनो।

भारतीय संस्कृति का आदर्श और कामना सूत्र रहा है-

सर्व भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया: ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:खभाग्भवेत् ।।[13]

अर्थात् सभी सुखी हों, सभी आलस्य (प्रभाद) से रहित हों, सभी कल्याण को देखें, किसी को भी दुख नहीं हो। इसी कामना के साथ सदगृहस्थ देवपूजन के समापन पर विश्व शान्ति की कामना करता हुआ कहता है कि

"संपूजकों को प्रतिपालकों को यतीन को यतिनायकों को।
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले कीजै सुखी है जिन शाँति को दे।।
होवै सारी प्रजा को सुख बलयुत हो धर्मधारी नरेशा।
होवै वर्षा समै पे तिलभर न रहे व्याधियों को अँदेशा।।
होवै चोरी न जारी सुसमय बरतै हो न दुष्काल मारी।
सारे ही देश धारैं जिनवर-वृषको जो सदा सौख्य कारी।।[14]

इतना ही नहीं, भारतीय संस्कृति में विश्वशाँति की कामना के साथ-साथ "विश्व बन्धुत्व" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना भी भायी गयी है, किन्तु आज के इस विषम दौर में धन-आधारित व्यवस्था के कारण इन भावनाओं ने या तो अपने अर्थ खो दिए हैं या अपने अर्थ बदल दिए हैं। "धन" जो कभी साधन था आज साध्य बन गया है। इस चिन्ता से प्रेरित "मूकमाटी" का रचनाकार लिखता है कि-

"वसुधैव कुटुम्बकम्"
इस व्यक्तित्व का दर्शन
स्वाद-महसूस
इन आँखों को
सुलभ नहीं रहा अब।
यदि यह सुलभ भी है
तो भारत में नहीं
महाभारत में देखो।
भारत में दर्शन स्वारथ का होता है।
------ हाँ - हाँ ।
इतना अवश्य परिवर्तन हुआ है कि
"वसुधैव कुटुम्बकम्"
इसका आधुनिकीकरण हुआ है
वसु यानी धन-द्रव्य
धन ही कुटुम्ब बन गया है
धन ही मुकुट बन गया है जीवन का।[15]"

और इस सोच के परिणामस्वरूप हमारी आध्यात्मिकता को ही नहीं, बल्कि समाजवादी स्वरूप को भी ठेस पहुँची है। धन-लिप्सा की दौड़ में व्यक्ति ने अपने सुख-चैन को तो खोया ही है, दूसरों के सुख-चैन को भी नष्ट कर दिया है। स्वयं के संचय के लिए वह दूसरों के मुँह का निबाला भी छीनने से नहीं डरता। आज व्यक्ति को सामाजिक बनाने के लिए धन के पीछे दौड़ने वाले पूँजीवादी दिमाग को परे करना पड़ेगा क्योंकि संसार में रहकर हमें संसार से मैत्री का भाव ही रखना चाहिए आखिर हम बैर करें भी तो किससे? यहाँ हमारा बैरी है ही कौन? बैर पशुप्रवृत्ति है मानवीय नहीं, मानव तो मैत्री भावना से बनता है। रचनाकार की कामना है कि-

"सबसे सदा-सहज बस
मैत्री रहे मेरी।
वैर किससे
क्यों और कब करूँ ?

यहाँ कोई भी तो नहीं है
संसार भर में मेरा बैरी।[16]"

असामाजिकता, अन्याय, उत्पीड़न और बैर भाव का बहुत बड़ा कारण हमारे नेतागण हैं, जिन्हें स्वार्थ ने अंधा बना दिया है। वे "पद" पर बैठकर पद के विरुद्ध आचरण करते हैं। अब राजा प्रजा का अनुरंजन न कर प्रजा का दोहन और शोषण करता है। वह बातें तो बड़ी-बड़ी करता है, किन्तु स्वयं वैसा आचरण नहीं करता। "कथनी और करनी" की इस भिन्नता ने नेतृत्व के प्रति आस्था को ही कमजोर नहीं किया, बल्कि कहीं-कहीं तो नेता को नायक से खलनायक की स्थिति में पहुँचा दिया है। आज सच्चे नेता कम और तथाकथित नेता अनगिनत हैं। स्वयं का आचरण पवित्र नहीं होने तथा नहीं दिखने के कारण "समाज" के बीच विश्वास कम हुआ है इसीलिए आचार्य श्री कामना करते हैं कि-

"पदाभिलाषी बनकर
पर पर पद-पात न करूँ,
उत्पात न करूँ
कभी भी किसी जीवन को
पद-दलित नहीं करूँ हे प्रभो।
आज पथ दिखाने वालों को
पथ दिख नहीं रहा है, माँ।
कारण विदित ही है-
जिसे पथ दिखाया जा रहा है
वह स्वयं पथ पर चलना चाहता नहीं
औरों को चलाना चाहता है
और
इन चालक, चालकों की संख्या अनगिन है।[17]"

"समाजवाद" के लिए आवश्यक है कि समाज में समता ही नही, बल्कि समरसता भी हो, किन्तु देखने में आता है समाज में "श्वान सभ्यता" ने अपना घर बना लिया है। आज व्यक्ति कुत्ते की तरह अपनी ही जाति पर गुर्राता है। सिंह वृत्ति समाप्त हो गयी है जबकि राजा की वृत्ति पहले सिंहवृत्ति

मानी जाती थी और आज भी उसकी आवश्यकता है-

"श्वान-सभ्यता-संस्कृति की
इसीलिए निन्दा होती है
कि
वह अपनी जाति को देखकर
धरती खोदता है, गुर्राता है
सिंह अपनी जाति में मिलकर जीता है
राजा की वृत्ति ऐसी ही होती है
होनी भी चाहिए।[18]"

कोई भी विचार धारा जनभावनाओं पर अवलम्बित होती है।

जन भावना को दो रूपों में देखा जाता है एक सज्जनता के रूप में और दूसरे दुर्जनता के रूप में। यह सज्जनता और दुर्जनता क्या है, इस विषय में आचार्य श्री का मत है कि-

"एक-दूसरे के सुख-दु:ख में
परस्पर भाग लेना
सज्जनता की पहचान है,
और
औरों के सुख देख, जलना
औरों के दु:ख को देख, खिलना,
दुर्जनता का सही लक्षण है।[19]"

अर्थात् एक-दूसरे के सुख-दुख में भाग लेना सज्जनता है और दूसरों के सुख को देख जलना, ईर्ष्या करना तथा दूसरों के दु:खों को देख हर्षित होना दुर्जनता है। इसी भाव की अभिव्यक्ति "कामायनी" में श्री जयशंकर प्रसाद जी कहते हैं कि-

औरों को हँसते देखो प्रभु हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।।[20]

"समाजवाद" शोषण के विरुद्ध विचारधारा का नाम है। जब किसी विचारधारा में दृष्टि भेद समाहित होता है तो वैचारिक संघर्ष भी जन्मते हैं।

समाजवाद की सही प्रतिष्ठा न होने का कारण है वर्ग भेद, वर्णभेद, जाति भेद। किसी का अधिक पोषण किया जा रहा है तो दूसरी और अत्यन्त शोषण है जिसकी परिणति आतंकवाद में होती है-

"यह बात निश्चित है कि
मान को टीस पहुँचने से ही
आतंकवाद का अवतार होता है
अति पोषण या अति शोषण का भी
यही परिणाम होता है।[21]"

"आतंक" जब किसी "वाद" से अभिव्यक्त होने लगे तो समझना चाहिए कि समाज में कुछ लोग इसके समर्थक भी हैं। भले ही हम इन्हें "भ्रमित जन" की संज्ञा दे। "वाद" वही श्रेष्ठ है जिसमें हिंसा, असत्य और चोरी के लिए कोई अवकाश नहीं हो। यही कारण है कि नक्सलवादी भी अपने आपको अमीर-गरीब का भेद मिटाने वाला कहते हैं, किन्तु उनके हिंसक और चौर्य रूप के कारण समाज उन्हें मान्यता नहीं देता।

समाजवाद को फलने-फूलने के अवसर लोकतंत्र में अधिक होते हैं, किन्तु आज लोकतंत्र भी नाम के रह गए हैं। जिस तंत्र को "जन" का सेवक होना चाहिए था वह "जन" से अपने पैर पुजवा रहा है। "जनतंत्र" के पर्याय रूप में "धनतंत्र" "मनमाना तंत्र" "भीड़ तंत्र" जैसे नाम प्रचलित हो गए हैं। लोक पीछे छूट गया है। तंत्र लोक को हाँक रहा है फिर भी हम हैं कि जाग नहीं रहे हैं यहाँ तक कि "गणतंत्र" के स्वरूप को लेकर भी प्रश्न उभरने लगे है-

"कभी-कभी बनाई जाती कड़ी से और कड़ी छडी
अपराधियों की पिटाई के लिए।
प्राय: अपराधी जन बच जाते
निरपराध ही पिट जाते,
और उन्हें
पीटते-पीटते टूटती हम।
इसे हम गणतंत्र कैसे कहें ?

यह तो शुद्ध "धनतंत्र" है
या मनमाना "तंत्र" है।[22]"

जहाँ अपराधी की जगह निरपराधी सजा पाने लगें, रक्षक भक्षक बन जायें, राजा अपने धर्म से विमुख हो जायें, मंत्री चाटुकार और पदलिप्सु हो जायें, सेवक अवज्ञाकारी हों, वहां "समाजवाद" तो क्या सामजिक स्वरूप की कल्पना ही बेकार हो जाती है। किसी भी तंत्र की सफलता उसके प्रति जन आस्था से प्रभावित होती है किन्तु यदि उसी "जन" का विश्वास न्याय पर नहीं रहे तो "तंत्र" की सफलता खतरे में ही मानना चाहिए। आज के दौर में न्याय प्राप्ति चॉद-तारे तोड़ने जैसा प्रतीत होने लगा है क्योंकि न्याय लम्बित ही नहीं, बल्कि विलम्बित भी हो गया है परिणाम स्वरूप न्याय और अन्याय के बीच की विभाजक रेखा समाप्त सी हो गई है। "मूकमाटी" में इसी भाव की अभिव्यक्ति प्रसंगवश हुई है-

"आशातीत विलम्ब के साथ
अन्याय न्याय-सा नहीं
न्याय अन्याय सा लगता ही है
और यही हुआ
इस युग में इसके साथ।[23]"

समाजवाद का एक लक्ष्य है सामाजिक असमानता को समाप्त कर विभेदक रेखाओं को समाप्त करना। तथाकथित पद-दलितों के उत्थान हेतु अनेकानेक सहयोगी योजनायें चल रही हैं, किन्तु अपेक्षित परिणाम सामने नहीं आ रहा है। कारण स्पष्ट है कि शरीर, अर्थ और शिक्षा की उन्नति से ही कोई व्यक्ति उन्नत नहीं बन सकता जब तक कि उसके संस्कार सात्विक हो-

"परन्तु! यह ध्यान रहे-
शारीरिक आर्थिक शैक्षणिक आदि
सहयोग मात्र से
नीच बन नहीं सकता उच्च
इस कार्य का सम्पन्न होना
सात्विक संस्कार पर आधारित है।[24]"

डॉ. केतकर का मत भी इसी बात से मेल खाता है। उनके अनुसार "जाति व्यवस्था नष्ट करने का तात्पर्य ब्राम्हणों को शूद्र बनाना नहीं, बल्कि शूद्रों को ब्राह्मण बनाना है।[25]"

"समाजवाद" की प्रबल विरोधी विचारधारा "पूंजीवाद" है।

जब पूँजी कुछ-एक लोगों तक सीमित हो जाती है तो अनेक लोगों को रोटी-कपड़ा-मकान जैसी मूल आवश्यकताओं से वंचित रहना पड़ता है। एक बार गांधी जी से एक मारवाड़ी सेठ ने पूछा कि- "आप सबसे टोपी लगाने के लिए कहते हैं यहाँ तक कि टोपी के साथ आपका नाम जुड़ गया है और लोग उसे गांधी टोपी कहने लगे हैं; फिर आप स्वयं टोपी न लगाकर नंगे सिर क्यों रहते हैं?

गांधी जी ने मारवाड़ी सेठ के प्रश्न को सुनकर उनसे उत्तर के स्थान पर प्रश्न किया कि- "आपने जो यह पगड़ी पहन रखी है इससे कितनी टोपी बन सकती हैं"?

मारवाड़ी सेठ ने उत्तर दिया- "बीस"

गांधी जी ने कहा कि "जब आप जैसा एक व्यक्ति बीस लोगों की टोपी अपने सिर पर रख लेता है तो उन्नीस लोगों को नंगे सिर रहना पड़ता है। उन्हीं उन्नीस लोगों में से मैं एक हूँ।

गांधी जी का उत्तर सुनकर मारवाड़ी सेठ निरुत्तर हो गया। बस पूंजीवाद में यही बुराई है वह दूसरों के अधिकार को हस्तगत कर लेता है। जैन धर्म में इसीलिए "अपरिग्रह" की अवधारणा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है ताकि पूंजीपति अपनी सम्पदा का स्वयमेव त्याग कर सकें। यहाँ गृहस्थ के लिए दान करना नित्यकर्म माना गया है। पूंजीवाद को अशान्ति का अन्तहीन सिलसिला बताते हुए आचार्य श्री विद्यासागर जी कहते है कि-

हे स्वर्ण कलश !
परतंत्र जीवन की आधारशिला हो तुम
पूँजीवाद के अभेद्य
दुर्गम किला हो तुम
और

अशान्ति के अन्तहीन सिलसिला।[26]"

समाजवाद की प्रतिष्ठापना हेतु सामाजिक जनों को संघर्ष करना होना लेकिन यह ध्यान रहे कि तुम्हारा यह संघर्ष "संहार" में नहीं बदल जाये। पराजय का तात्पर्य मात्र हार मानकर बैठ जाना नहीं है बल्कि जीतने के लिए पुनः प्रयत्न करना है। निरन्तर जीवनोत्कर्ष से ही "उच्च" लक्ष्यों की प्राप्ति संभव होगी। कवि के ये शब्द प्रेरणा के द्योतक हैं-

"संहार की बात मत करो,
संघर्ष करते जाओ!
हार की बात मत करो
उत्कर्ष करते जाओ।[27]"

जब व्यक्ति समष्टि में अपनी पहचान खोजता है तब समाजवाद का जन्म होता है और जब अपने में समष्टि की पहचान खोजता है तो व्यक्तिवाद होता है। व्यक्तिवाद का लक्ष्य वैयक्तिक भोग साधनों की प्राप्ति करना है उसका विश्वास स्वयं के उत्थान पर आधारित है। वह सोचता है-

"स्वागत मेरा हो
मनमोहन विलासितायें
मुझे मिलें अच्छी वस्तुएँ-
ऐसी तामसता भरी धारणा है तुम्हारी
फिर भला बता दो हमें,
आस्था कहाँ है समाजवाद में तुम्हारी?
सबसे आगे मैं
समाज बाद में।[28]"

नितान्त वैयक्तिक धारणा तामसता है जिसके रहते "समाजवाद" के प्रति आस्था संभव ही नहीं है। समाजवाद सामाजिक विचारधारा से आयेगा। जहाँ यह सोच होगा कि मैं सबसे आगे और बाद में समाज वहाँ समाजवाद कैसे संभव होगा ?

"समाजवाद" में निहित धारणा को स्पष्ट करते हुए आचार्य श्री कहते हैं कि-

"अरे कम - से - कम

शब्दार्थ की ओर तो देखो !
समाज का अर्थ होता है समूह
और
समूह यानी
सम-समीचीन ऊह-विचार है
जो सदाचार की नींव है।
कुल मिलाकर अर्थ यह हुआ कि
प्रचार-प्रसार से दूर
प्रशस्त आचार-विचार वालों का
जीवन ही समाजवाद है
समाजवाद समाजवाद चिल्लाने मात्र से
समाजवादी नहीं बनोगे।[29]''

जैसा कि समाजवाद शब्द से ही अर्थ ध्वनित होता है कि समाज यानी समूह यानी जिसके विचार सम्यक् हैं और जो सदाचार की नींव पर आधारित है ऐसा प्रचार-प्रसार से दूर श्रेष्ठ आचार और श्रेष्ठ विचार वालों का जीवन ही समाजवाद है। तात्पर्य यह है कि समाजवादी बनने के लिए अपने आचार-विचार को श्रेष्ठ बनाना होगा, मात्र समाजवाद-समाजवाद चिल्लाने से कोई समाजवादी नहीं बनेगा।

आज देखने में यही आ रहा है कि जो अपने लिए समाजवादी कहते हैं वे समाजवाद के निहितार्थ का स्पर्श भी नहीं करते। इस स्थिति पर समकालीन विचारधारा के कवि ''धूमिल'' का मंतव्य है कि-

''भूख और भूख की आड़ में
चबायी गयी चीजों का अक्स
उनके दाँतों पर ढूँटना
बेकार है। समाजवाद
उनकी जुबान पर अपनी सुरक्षा का
एक आधुनिक मुहावरा है।
मगर मैं जानता हूं कि मेरे देश का समाजवाद
मालगोदाम में लटकती हुई

उन बाल्टियों की तरह है जिस पर "आग" लिखा है
और उनमें बालू और पानी भरा है।[30]"

तात्पर्य स्पष्ट है कि आज समाजवाद का नारा पूंजीपतियों, भ्रष्ट राजनेताओं ने अपने सुरक्षा-कवच के रूप में अपना लिया है। वे गरीबों की भूख का सौदा करते हैं और वह भी उस शातिर बदमाश की तरह जो दुष्कृत्य तो करता है, किन्तु कोई सबूत नहीं छोड़ता। हमारे देश में समाजवाद उसी तरह खोखला हो गया है जिस तरह मालगोदाम में लटकी हुई बाल्टियां जिनके ऊपर आग लिखा होता है किन्तु अन्दर बालू और पानी भरा होता है। कथन से ही स्पष्ट है कि जो बाहर प्रदर्शित किया जाता है वह अन्दर नहीं होता और समाजवाद स्पष्टतः बाह्य और अन्तर की एकात्म व्यवस्था है। यदि भेद है तो समाजवाद हो ही नहीं सकता। यदि समाजवाद के लक्ष्यों को यथार्थ में पाना है तो आचार्य श्री के इन वचनों का समादर करना होगा कि-

"अब धनसंग्रह नहीं
जन संग्रह करो।
और
लोभ के वशीभूत हो
अंधाधुन्ध संकलित का
समुचित वितरण करो
अन्यथा
धनहीनों में
चोरी के भाव जागते हैं, जागे हैं।
चोरी मत कर, चोरी मत करो
यह कहना केवल
धर्म का नाटक है
उपरिल सभ्यता ---- उपचार।
चोर इतने पापी नहीं होते
जितने कि
चोरों को पैदा करने वाले
तुम स्वयं चोर हो

चोरों को पालते हो
और
चोरों के जनक भी।[31]''

अर्थात् अब धनसंग्रह के स्थान पर जनसंग्रह करो यानी कि जिससे जनहित हो; ऐसे कार्य करो। लोभ के वशीभूत होकर जो तुमने अंधाधुंध संपदा एकत्र की है उसका समुचित वितरण करो। ऐसा नहीं होने पर धनहीनों (गरीबों) में चोरी के भाव जागते हैं, जागे हैं। चोरी मत करो, चोरी मत करो'' यह कहना केवल धर्म का नाटक, बाह्य सभ्यता मात्र बनकर रह गया है क्योंकि हमारा आचरण चोर बनने के लिए व्यक्तियों को प्रेरणा देता है। वास्तव में चोर इतने पापी नहीं होते जितने कि चोरों को पैदा करने वाले। जो संचयी हैं वे स्वयं चोर हैं, चोरों को वे ही पालते हैं और चोरों को उत्पन्न भी वे ही करते हैं इसलिए आवश्यक है कि हम अपनी सोच-विचार को बदलें। किसी शायर ने ठीक ही लिखा है कि-

''कोठियों से मत आँकिए मुल्क की मैयार।
असली हिन्दुस्तान तो फुटपाथ पर आबाद है।।''

''समाजवाद'' में क्रान्ति को कोई स्थान नहीं है यह तो पूरी तरह स्वैच्छिक शान्ति की व्यवस्था है जो ''महाजनो येन गत: सा पन्थ:'' की नीति पर चलती है इसीलिए सच्चा समाजवादी भावना करता है कि-

''यहाँ ---- सब का सदा
जीवन बने मंगलमय
छा जावे सुख-छाँव
सबके सब टलें-
अमंगल भाव
सब की जीवन लता
हरित-भरित विहँसित हो
गुण के फूल विलसित हों
नाशा की आशा मिटे
आमूल महक उठें

-----बस।[32]''

अर्थात् यहाँ सबका जीवन मंगलमय बने, सबका कल्याण हो। सब पर सुख की छाया हो। सबके अमंगल दूर हो। सबकी जीवन रूपी लता हरी-भरी और खिली हुई हो उस पर गुण के फूल खिले हों। सबकी नाशा की आशा यानी सुगन्धि की चाह मिट जाये ताकि वह जीवन लता जड़ सहित महक उठे।

इस प्रकार ''मूकमाटी'' में आचार्य श्री विद्यासागर जी ने समाजवाद के उन रूपों, पक्षों का उद्घाटन किया है जिनके स्तम्भ और भित्तियों पर समाजवाद का महल खड़ा हो सकता है। सच्चे सामाजिक और समाजवादी बनने के लक्ष्य को सामने रखते हुए हमें विवेक-बुद्धि को जागृत करना चाहिए तथा भेद-भाव समाप्त करना चाहिए; यही कवि की धारणा भी ''मूकमाटी'' में मूक नहीं बल्कि मुखरित होती है-

''समाजवाद का लय हो
भेदभाव का अन्त हो
भेद-भाव जयवन्त हो।[33]''

सन्दर्भ

(1) प्रिंसिपल्स ऑफ सोशियोलॉजी, प्र. 27, (2) डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी, प्र. 300
(3) द्रष्टव्य आधुनिक राजनीतिक विचारधाराये : पुखराज जैन, प्र 115
(4) मूकमाटी - 32, (5) वही - 33, (6) उत्तराध्ययन 25 - 31, (7) मूकमाटी - 47,
(8) वही - 355, (9) वही - 55, (10) वही - 64, (11) मूकमाटी - 50, (12) मूकमाटी - 51,
(14) जिनवाणी संग्रह (शान्ति पाठ) पृ. 521 से 522, (15) मूकमाटी - 82, (16) मूकमाटी - 105,
(17) मूकमाटी - 115, (18) वही 171, (19) मूकमाटी - 168, (20) कामायनी - ,
(21) मूकमाटी - 418, (22) मूकमाटी - 271, (23) मूकमाटी - 272, (24) वही - 273,
(25) निजी डायरी में संगृहीत विचार, (26) मूकमाटी - 366, (27) मूकमाटी - 432,
(28) मूकमाटी 460 - 461, (29) मूकमाटी - 461, (30) ससद से सड़क तक, 126-127,
(31) मूकमाटी - 467-468, (32) मूकमाटी - 478, (33) मूकमाटी - 474

-सम्पादक पार्श्वज्योति
हिन्दी विभाग,
सेवासदन महाविद्यालय, (बुरहानपुर) म. प्र.

महाकवि वीर : 'जंबुसामि चरिउ'

-डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन

भारत एक ऐसा विशाल देश है, जहाँ धर्म, सम्प्रदाय, जातियों की विविधता के बावजूद भी, अनेकता में एकता पायी जाती है। इसी विशेषता के कारण भारतीय संस्कृति की गणना विश्व की महान् संस्कृतियों में की जाती है। प्राचीन काल में भारत जगद्गुरु कहलाता था। उन्नीसवीं शताब्दी के सांस्कृतिक महाजागरण काल में हमें ऐसा लगने लगा था कि विश्व का आध्यात्मिक नेतृत्व, फिर से भारत के हाथ में आने वाला है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तो दुनिया के दूसरे देशों के लोग भी यह सोचने लगे थे, कि भारत के पास कोई ऐसा सन्देश है, जिसमें समूची मानवता का हित निहित है। भले ही आज के अति भौतिकवादी युग में हम अपनी रोटी दूसरों के साथ बाँट कर खाने के बजाय, दूसरों की रोटी छीन कर खाने पर आमादा हों। भले ही उपनिषद् के ऋषि के "तेन त्यक्तेन भुंजीथा:" अर्थात् 'भोग भी त्याग के साथ करें', के सन्देश को हमने भुला दिया हो; पर फिर भी, यह बात सच है कि इन नवीन विश्व को, यदि कुछ पाना है, तो वह उसे प्राचीन भारत से ही प्राप्त हो सकता है। प्राचीन भारत से यहाँ अभिप्राय, हमारे ऋषि मुनियों द्वारा हमें सौंपी गई, उस आध्यात्मिक और साहित्यिक धरोहर से है, जो काफी जद्दो-जहद के बाद बड़े प्रयत्न-पूर्वक आज भी हमारे ग्रंथागारों में सुरक्षित है। इनमें से कुछ अमूल्य रत्न प्रकाश में आये हैं, और कुछ अभी प्रकाश में आने की बाट जोह रहे हैं।

इस साहित्य भण्डार की श्रीवृद्धि में जैन साहित्यकारों का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पर साहित्य के महाराथियों ने, उसे आँख उठाकर देखने की कृपा ही नहीं की। हिन्दी-साहित्य के एक नहीं, अनेक इतिहास प्रकाशित हुए, किन्तु उनमें जैन साहित्य का कहीं कोई उल्लेख नही मिलता जिसे देख कर यह पता चले कि जैन साहित्यकारों का भी कोई अनूठा साहित्य था। हिन्दी की उत्पत्ति की चर्चा में कहीं-कहीं अपभ्रंश का नाम लिया गया

है या फिर कहीं-कहीं कुछ जैन साहित्यकारों का नामोल्लेख मात्र करके चुप्पी साध ली जाती है। यही नहीं, कहीं-कहीं तो यह कह दिया गया है कि वह जैन धर्म से सम्बन्धित और साम्प्रदायिक है। जबकि साहित्यकार चाहे जिसे देश, जाति, धर्म या सम्प्रदाय का हो वह सत्य और सौन्दर्य की तह में प्रवेश करके, अपने मानस से भाव राशि के मोती चुनकर, उन्हें शब्दों की लड़ी में पिरोकर, शिव की साधना करता है।

जैन मतानुसार, 'साहित्य', 'श्रुतज्ञान' का अपरनाम है। जो मूलतः अर्ध-मागधी प्राकृत भाषा में था। मानवीय आवश्यकता के अनुरूप वह संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश आदि भाषाओं में रचा गया। पूर्वाचार्यो की इस परम्परा और संस्कृति को अविच्छिन्न बनाये रखने वाले जैन मनीषियों ने भी साहित्य की अभिवृद्धि में अपना अमूल्य योगदान दिया। उनके द्वारा जो सुन्दर आत्मपीयूष से छल-छलाता हुआ साहित्य रचा गया, वही आज जैन साहित्य के नाम से अभिप्रेत है। जैनाचार्यों ने प्रारम्भ से ही, लोक भाषा को, अपने साहित्य का माध्यम बनाया। सातवीं-आठवीं शताब्दी में तो उन्होनें संस्कृत का पल्ला छोड़कर, अपभ्रंश भाषा में साहित्य का सृजन किया। यों तो 17 वीं शताब्दी तक अपभ्रंश रचनाएँ पायी जाती है, पर 10वीं, 11 वीं और 12 वीं शताब्दी तो अपभ्रंश भाषा की स्वर्ण युग रही है। इस अवधि में अपभ्रंश साहित्य विपुल परिमाण में रचा गया।

यही वि. सं. 1010 से 1075 तक का समय, महाकवि वीर का काल रहा है। कवि ने अपनी एक मात्र उपलब्ध कृति, 'जंबुसामि चरिउ' में उसके रचना काल का उल्लेख करते हुये माध शुक्ला दशमी वि. सं. 1973 में उसके पूर्ण होने की बात कही है-

> "विक्कमनिवकालाओं छाहत्तर दससएसु वरिसाणं।
> माहम्मि सूद्ध पक्खे दसम्मि दिवसम्मि संतम्मि।।2।।"[2]

जैसा कि कवि ने आगे प्रशस्ति में ही लिखा है कि बहुत से राजकार्यों में व्यस्त रहने के कारण उन्हें पूरा करने में एक वर्ष का समय लगा।[3] कवि के द्वारा उल्लेखित अपने समय की पुष्टि बाह्य साक्ष्य से भी होती है। उनकी इस कृति पर महाकवि पुष्पदंत का प्रभाव देखा जाता है तथा उनका समय वि. की

9 वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध एवं 10 वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध रहा है। यही नहीं, कवि के परवर्ती, वि. सं. 1100 में हुये मुनि नयनंदि के 'सुदंसण चरिउ' पर कवि के 'जंबुसामि चरिउ' का प्रभाव भी इस काल की सिद्धि करता है। कवि ने अपनी इस कृति में जिन ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख किया है, उनसे भी इसका रचना काल यही सिद्ध होता है।[4] डॉ. हीरालाल जैन और डॉ. आ. ने. उपाध्ये भी इस कृति का अन्य कृतियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'जंबूचरियं' की रचना निश्चित ही वि. सं. 1076 में 'जंबुसामि चरिउ' के प्रणयन से अवश्य ही कुछ समय पूर्व ही हो चुकी होगी, तथा इसकी ख्याति से आकृष्ट होकर 'वीर कवि' ने इसका अध्ययन किया होगा।[5]

कवि ने 'जंबुसामि चरिउ' में अपना परिचय देते हुये लिखा है कि वह मालव देश के प्राचीन नगर सिद्ध वर्षो के पास गुलखेडी/गुलखेड गाँव के निवासी लाड वग्ग वंशीय महाकवि देवदत्त की पत्नी, 'संतुवा' की कोख से जन्मे प्रथम पुत्र थे। इनके अलावा इन के तीन छोटे भाई और भी थे, जिनके नाम साहिल, लक्षणीक तथा जईस थे। कवि के चार विवाह हुये थे। उनकी चारों पत्नियों के नाम - जिनमती, पद्मावती, लीलावती और जयादेवी थे। इनमें से पहली पत्नी 'जिनमती' से कवि को 'नेमिचन्द्र' नामक पुत्र की प्राप्ति हुई।[6] 'जंबुसामि चरिउ' के अध्ययन से पता चलता है कि कवि का अध्ययन बहुत विशद था। उन्होंने पतंजलि के व्याकरण महाभाष्य पर कैयट द्वारा रचित 'प्रदीप' नामक प्रख्यात टीका से शब्द शास्त्र का, छन्द शास्त्र का[7], नामकोश का, तर्कशास्त्र का गहन अध्ययन किया। इसके अलावा उन्होंने प्राकृत काव्य 'सेतबन्धु' का भी विशेष अध्ययन किया। बाल्मीकि रामायण[9] और महाभारत[10] तथा शिवपुराण आदि का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। जैनागम के चारों अनुयोगों में भी उनका अच्छा अध्ययन था। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र[11] आदि प्राचीन ग्रथों का तथा अन्य शास्त्रीय लक्षण ग्रथों का भी उन्होंने तलस्पर्शी अध्ययन किया था। अपने पूर्ववर्ती कवियों-महाकवि कालिदास और पुष्पदन्त आदि के साहित्यिक गुण उन्हें परम्परा से प्राप्त थे। वे बाण आदि प्रख्यात लेखकों की कृतियों से भी सुपरिचित थे। कवि के अध्ययन सम्बन्धी इस विस्तृत विवरण से स्पष्ट है कि वे संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में भी काव्य रचना करने में

पूर्ण निष्णात थे, पर अपने पिता के, मित्र की, प्रेरणा और आग्रह पर, आपने 'जंबुसामि चरिउ' की रचना तत्कालीन लोकभाषा अपभ्रंश में ही की।

कवि को प्राचीन साहित्य में तो जंबुस्वामी के चरित्र से सम्बन्धित ऐतिहासिक सामग्री अत्यन्त संक्षिप्त रूप में ही प्राप्त हुई; परन्तु उसी नींव पर उन्होंने अपनी कल्पना और काव्य प्रतिभा के बल पर 'जंबुसामि चरिउ' नामक इस महाकाव्य की रचना की कवि की इस कृति की कथावस्तु का आधार, कवि गुणपाल की प्राकृत भाषा की रचना 'जंबुचरियं' रही है। इसके अलावा अन्य पूर्ववर्ती कृतियों में पायी जाने वाली सामग्री में ही परिवर्तन, परिवर्द्धन और संशोधन करके वीर कवि ने अपनी इस कृति को एक चरित्रात्मक महाकाव्य का रूप प्रदान किया है। उन्होंने इसकी कथावस्तु 11 संधियों में विभाजित की है। ग्रंथ के आरम्भ में मंगलाचरण करके, अपने अध्ययन की बात कहता हुआ, विनम्रता प्रदर्शित करता है। प्रथम तीन संधियों में कवि ने भवदत्त और भवदेव के जन्म जन्मान्तरों का वर्णन किया है। चौथी संधि से जंबुस्वामी की कथा का आरम्भ हो जाती है। पाँचवीं संधि से सातवीं तक कवि ने जंबुस्वामी की वीरता तथा चार कन्याओं के साथ उनके विवाह का वर्णन किया है। आठवीं संधि में बसन्त क्रीड़ा, हाथी का उपद्रव तथा युद्ध वृत्त आदि का वर्णन है। इस के बाद कवि ने काव्य के लक्षणों पर प्रकाश डालते हुये कथा सूत्र को आगे बढ़ाया है। इसी में सुधर्मास्वामी से भवदत्त और भवदेव के पाँचो भवों (जन्मों) का वर्णन सुनकर विरक्त हुये जम्बुस्वामी को चारों पत्नियाँ वश में करने का प्रयास करती हैं। नौवीं संधि में भी इसी परस्पर कथा-वार्ता का क्रम चलता है। दशवीं संधि में विद्युच्चर भी उन्हें भोगों की ओर प्रेरित करने का विफल प्रयास करता है, पर जंबुस्वामी दीक्षा ग्रहण कर मुनि बन जाते है। उनके माता-पिता और चारों पत्नियाँ भी साधना के मार्ग पर चल पड़ते है। इसी संधि में सुधर्मा स्वामी के निर्वाण, जंबूस्वामी कैवल्य और निर्वाण का भी वर्णन किया है। ग्यारहवीं संधि में विद्युच्चर की साधना के द्वारा सर्वार्थ सिद्धि गमन का भी वर्णन है। अन्त में कवि ने प्रशस्ति के अन्तर्गत अपना परिचय तथा कृति के रचना काल आदि का उल्लेख किया है। इस कृति में अन्तर्कथाओं ने मूल कथा वस्तु को गति प्रदान करने के साथ-साथ कथा वस्तु की मूल धारा को आवश्यक मोड़ देने में बड़ी सहायता की है। कहीं-कहीं वे भावी घटनाओं का संकेत भी देती हैं। वे नायक के चारित्रिक गुणों का उद्घाटन करते हुए, कवि को अपने निश्चित उद्देश्य तक पहुंचाने में

सफल बनाती है। इन्हीं के कारण उसे उपदेश देने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

'काव्य' और 'महाकाव्य' की कसौटी पर भी कवि का 'जंबुसामि चरिउ' चरित-नामान्तक महाकाव्य पूरी तरह खरा उतरता है। भावयोजना की दृष्टि से इसे प्रेमाख्यानक महाकाव्य कहा गया है।[12] इसका आरम्भ बड़े भाई के द्वारा छोटे भाई भवदेव के अनिच्छा पूर्वक दीक्षित कर लिये जाने से प्रिय-वियोगजन्य विप्रलंभ श्रृंगार से होता है। पर अन्त में शान्त रस में परिणत हो जाता है। कवि ने इस कृति में मुख्य रूप से वीर, बीभत्स, रौद्र, भयानक एवं शान्त रसों की योजना की है। इसके अलावा अद्‌भुत, करुण और हास्य रस के अंश भी इस काव्य में मिलते तो है, पर बहुत ही थोड़ी मात्रा में। कवि ने स्वयं भी अपनी इस रचना का श्रृंगार वीर रसात्मक महाकाव्य कहा है। कवि की रस योजना का आनन्द लेने के लिये इस कृति के कुछ प्रमुख प्रसंग हष्टव्य हैं- वियोग ृंगार-मिथुनों की उद्यान क्रीड़ा,[13] संयोग श्रृंगार-जम्बू की प्रव्रज्या के समाचार से विचलित माता की मनोदशा,[14] शान्त रस-भवदेव का अन्तर्द्वन्द्व[15], भगवान महावीर का उपदेश[16] तथा संधि तीन सम्पूर्ण तथा संधि आठ, ग्यारह भी लगभग पूर्ण। वीर रस-युद्ध वर्णन में[17], भयानक और बीभत्स रस क्रमशः युद्ध वर्णन और विद्युच्चर मुनि के ऊपर दैवी उपसर्ग के प्रसंगो में[18] मिलता है, रसों के साथ ही काव्यत्व उत्पन्न करने हेतु, कवि ने यथा-स्थान अलंकार, गुण और रीतियों की भी सुंदर योजना की है। अलंकारों में कवि ने अनुप्रास, यमक[19], उपमा, रुपक और उत्प्रेक्षा अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। वसन्त ऋतु में मिथुनों की उद्यान क्रीड़ा में उत्प्रेक्षा की छटा देखते ही बनती है।[20] रूपक का प्रयोग तो कवि ने इस कृति में आद्योपांत किया है। छन्दों की दृष्टि से इसकी रचना प्रमुख रुप से 16 मात्रिक छन्दों में हुई है। कवि ने माधुर्य-भवदेव का पत्नी स्मरण (2.14), ओज-हाथी का उपद्रव (4.21) युद्धवर्णन (5.14, 6.11) और प्रसाद सभी गुण का प्रयोग किया है। प्रसाद गुण के तो शाताधिक उदाहरण मिलते है।

कुछ प्रमुख सन्दर्भ- कवि का विनय प्रदर्शन (2.2) मगध देश का वर्णन (1.8) रानियों का सौन्दर्य (1.12), वसन्त आगमन (4. 15.7-16) जंबूस्वामी का आत्म-चिन्तन (9.1) आदि। इस प्रकार हम देखते है कि कवि की यह कृति गुणयुक्त और दोषमुक्त है। रचना शैली की दृष्टि से 'जंबुसामि चरिउ'

की रचना किसी एक शैली में नही हुई। दूसरी संधि का अधिकांश भाग जहाँ वैदर्मी शैली में है, तो जंबुस्वामी की माता के सपने, वसन्त आगमन पर उद्यान का सौन्दर्य तथा तीसरी संधि का अधिकांश भाग वैदर्भी की और झुकती हुई पांचाली शैली में है। इसी प्रकार हाथी का उपद्रव, युद्ध एवं विद्युच्चर का देशदर्शन गौडी रीति में रचा गया है। कवि ने अपनी इस कृति में सुभाषित और लोकोक्तियों का भी सुन्दर प्रयोग किया है।

कुछ उदाहरण देखिये-चन्द्रमा की किरण कौन छू सकता है। (5.4.12); सूर्य के घोड़े की गति को कौन रोक सकता है। (5.5.1); यमराज के भैंसे के सींग को कौन उखाड़ सकता है। (3.5.2) यही नहीं, कवि ने कहावतों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। मूर्ख किसान (9.4), विद्याधर (9.6), सर्प (9. 10) आदि प्रसंगों में उस की यह कला द्रष्टव्य है। कवि की 'जंबुसामि चरिउ' नामक इस कृति में महाकाव्य के सभी लक्षण-इतिवृत्ति, वस्तु व्यापार वर्णन, संवाद एवं भाव व्यंजना ये चारों अवयव सन्तुलित रूप में घटित हुये है। कवि ने जीवन की समग्रता का चित्रण कई जन्मों की कहानी का आलम्बन लेकर किया है। कृति की भाषा व्याकरण सम्मत अपभ्रंश है। इस में संस्कृत और प्राकृत के शब्द ही नहीं मिलते, बल्कि पहली संधि के अन्त में संस्कृत के कुछ श्लोक तथा पाँचवी संधि के 11वें कडवक में एक आर्या मिलती है। प्राकृत की तो अनेक गाथाएँ ही प्रत्येक संधि के प्रारम्भ में मिल जाती हैं। संक्षेप में इसमें श्रुति मधुर शब्द, अर्थ गाम्भीर्य (1.2.1, 8.18) अर्थगत स्पष्टता और अर्थ सौन्दर्य (7.14) आदि कई विशेषतायें देखने को मिलती है।

अपनी इस कृति में कवि ने तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति का भी वर्णन किया है। धर्म के नाम पर यज्ञों में पशुबलि दी जाती थी। लोगों की तंत्र-मंत्र में आस्था थी। समाज में विभिन्न वर्णो के द्वारा संपादित किये जाने वाले कार्यो की चर्चा करते हुये कवि ने ब्राह्मणों को वैदिक साहित्य का अध्ययन करने वाला कहा है, क्षत्रियों का मुख्य कार्य युद्ध में लड़ना था, वैश्यों का मुख्य व्यवसाय-व्यापार या वाणिज्य था। उस समय जल और थल दोनों ही मार्गों से व्यापार होता था। (8.3.9) 'जंबुसामि चरिउ' में 'शूद्र' का उल्लेख न होकर एक अन्तर कथा (10.12.27) में मेहतर के लिये कर्म कार/कर्मकर, शब्द आया है (10.15-27)। शिक्षा गुरुगृह में रहकर ही प्राप्त

की जाती थी। विवाह व्यवस्था थी (2.9.10) भवदेव को नागवसु से विवाह, जंबूस्वामी का चार कन्याओं से विवाह। कवि ने उस युग के ग्राम जीवन व नगरीय जीवन की भी चर्चा की है। नगरों में ऊँचे गवाक्ष युक्त प्रासाद, ऊँचे देवालय, दानशालायें (3.3.1) द्यूत गृह (8.3.13) वेश्या गृह (3.2.5-6) आदि थे। ग्राम्य जीवन की झलक मगध के 'वर्धमान' गाँव के प्रसंग में मिलता है। यहां की रमणियां बहुत सुन्दर थी। ब्राह्मण समूह मिलकर वेद पाठ करते थे। नवदीक्षित पुरोहित पशुहोम करते थे और प्रतिदिन खूब सोम पान करते। यहां बड़े-बड़े सरोवर थे। महुए के वृक्ष बहुतायत से पाए जाते थे। धान की खेती होती थी। नागरिक श्रद्धालु और सम्पन्न थे। साधारण दरिद्रों के जीवन का भी चित्रण कवि की इस कृति में मिलता है। कवि के द्वारा दी गई समकालीन ऐतिहासिक घटनाएँ भी तत्कालीन इतिहास पर अच्छा प्रकाश डालती है। कुल मिलाकर यह एक श्रेष्ठ कृति है।

सन्दर्भ सूची

(1) कामता प्रसाद जैन, 'हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास',

(2) 'जबुसामि चरिउ' प्रशस्ति, पद्य सं. 2 पृष्ठ स 232, (3) वही, पद्य सं. 5, पृष्ठ स 232,

(4) 'जंबुसामि चरिउ', प्रस्तावना, पृष्ठ स. 16-17, (5) वही, प्रस्तावना, पृष्ठ सं. 35,

(6) 'जबुसामि चरिउ' प्रशस्ति पद्य सं 6-8, पृ स. 232, (7) वही, 2.3.3, (8) वही, वही,

(9) वही, 1.3 4;, 3.12 1-2;, 5.8.33-34, (10) वही, 5.8.31-32, (11) वही, 3 1.3-4,

(12) वही, प्रस्तावना पृ. सं. 92, (13) वही, 4.17-18, (14) वही, 8.7, 9.14 (15) वही 2.66,

(16) वही, 2.1, (17) वही, 6.7 5-7, 6; 10.4; 1 4; 7.1.9-22, (18) वही, 10.26.1-4,

(19) वही, 2.6 2.7, 3.24-9, (20) वही 4 16.11-12

सदस्य
निदेशक मण्डल,
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर
'तृप्ति निवास' - 107, गली नं. 3,
तिलक नगर, इन्दौर-452018
दूरभाष - 0731-490619

ऋषभ नगर (मरसलगंज) का जैन मन्दिर

-सुरेशचन्द्र जैन बारोलिया

अनेकों वैभवपूर्ण, चमत्कारी गाथाओं से घिरी हुई उत्तर प्रदेश की प्रमुख सुहागनगरी फिरोजाबाद से 21 किलोमीटर दूर श्री दि0 जैन अतिशय क्षेत्र ऋषभ नगर, मरसलगंज जहां हजारों की संख्या में दुखी मानव जीवन की मनोकामनाओं की पूर्ति और परिणामों में शान्ति प्राप्ति के लिए आते रहे हैं। दुख: के इस वातावरण में जब कि प्रत्येक बन्धु किसी न किसी रूप से दुखी है उसी दुखी वातावरण में शान्ति प्रदान करने के लिये ये मन्दिर दुखी मानव की शरणस्थली है। इस महामनोहर प्राचीन क्षेत्र का ऐसा अतिशय है कि यहां के भव्य जिनालय में प्रवेश करते ही प्रत्येक यात्री को शान्ति एवं निराकुलता का अनुभव होता है तथा अनेकों शुभ संकल्प पूर्ण होते हैं।

ऋषभनगर के इस महान् अतिशय चमत्कारी जैन मन्दिर में दिगम्बरत्व के महान सन्तों के पावन चरण पड़े बिना नही रह सके जिनमें सन् 1957 में चरित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्ति सागर जी (दक्षिण) प्रमुख है। उनकी स्मृति में यहां शिखर युक्त स्मारक सुन्दर तालाब-बगीचे आदि का निर्माण हुआ। 18 भाषा-भाषी आचार्य महावीर कीर्ति जी, सन्मार्ग दिवाकर आचार्य विमलसागर जी, अर्यिकारत्न विशुद्धमति माताजी, बालाचार्य नेमीसागर जी, बालयोगी मुनि अमित सागर जी आदि अनेकों सन्तो ने इसे भूमि से चरण को स्पर्श कर अपने को धन्य किया है। इन सन्तों ने इस तीर्थ को महान् चमत्कारी एवं त्यागियों के ध्यान करने योग्य बताया है।

मन्दिर के निर्माण एवं प्रतिष्ठा की अनेकों चमत्कारी घटनाएँ है। ईसा की पन्द्रहवीं सदी में दक्षिण दिशा वासी गौड विप्रवर्ण दिगम्बर जैन धर्मालम्बी तथा अनेकों मंत्र-तन्त्र के ज्ञाता पूज्य बाबा 105 श्री ऋषभदास जी का यकायक विहार करते हुये इस पुण्यभूमि पर शुभागमन हुआ बाबा केवल एक चद्दर व

लंगोटी के परिग्रह के धारक थे। उस समय मरसलगंज धनधान्य से परिपूर्ण एक व्यापारिक केन्द्र था। बाबा ऋषभ दास ने इस पुण्यभूमि पर मन्दिर बनवाने का संकल्प किया। नगर के धर्म प्रेमियों से मन्दिर का निर्माण कार्य आरम्भ हुआ। उसी समय किसी अधर्मी ने राजा से शिकायत कि कोई जैन बाबा मरसलगंज की जमीन को अपने आधीन कर जैन मन्दिर का निर्माण करवा रहा है। राजा के आदेश से निर्माण कार्य बन्द करवा दिया गया। कहते हैं कि किसी धार्मिक कार्य में बाधा उत्पन्न करने पर परिणाम नजर आने लगते हैं। उसी रात्रि राजा अपने शयन कक्ष में विराजमान थे उन्होंने अनुभव किया कि मेरा किला घूम रहा है और मुझे कोई पीट रहा है। मगर दिखाई नही दे रहा है। राजा ने मंत्रियों से मंत्रणा की। किसी ने कहा- आपने बाबा को मन्दिर न बनवाने का आदेश दिया है, यह उसी का परिणाम है। राजा तुरन्त नंगे पैर जाकर बाबा के चरणों में गिर गया तथा क्षमा मांगी एवं आदेश दिया कि जितना धन मन्दिर निर्माण में लगेगा वह सब राज कोष से दिया जायेगा कोई चंदा एकत्रित नही होगा। जितने रुपये की जरूरत होती थी बाबा चटाई के नीचे से निकाल कर जेवर आभूषण रुपया आदि दिया करते थे। इस प्रकार एक विशाल शिखर युक्त कलात्मक जिनालय का निर्माण किया गया। यह चमत्कारी घटना मन्दिर निर्माण की गाथा स्वत: कह रही है।

मन्दिर में जिन बिम्ब स्थापना का आयोजन स्वयं बाबा ने अपने नेतृत्व में किया तथा दूर दूर से लाकर अतिशय युक्त प्राचीन मनमोहन वीतराग शांत मुद्रा की 1008 देवाधिदेव भगवान ऋषभदेव की श्वेतवर्ण पद्मासन जिनबिम्ब को मन्दिर जी की मुख्य वेदी में मूलनायक के रूप में विराजमान किया गया। यह मूर्ति एक हजार वर्ष पूर्व प्रतिष्ठित है। जिनबिम्ब प्रतिष्ठा के पावन अवसर पर अनेकों चमत्कारी आश्चर्य जनक घटनाओं से समाज एवं अधिकारियों को भी चकित कर दिया था। कहा जाता है कि प्रतिष्ठा के अवसर पर श्रद्धालुओं की अपार भीड़ थी। कुएँ के पानी समाप्त हो गये, पानी के लिए हा-हाकार यात्री कर रहे थे तभी बाबा ने मंत्र पढ़कर कुऐ में कुछ कंकड डाल दिये तो कुऐ में पानी इतना हो गया कि आज तक समाप्त नहीं हुआ है। मेले में अपार भीड़ के कारण भोजन कम पड़ने लगा। भोजन बनाते समय आटा, घी समाप्त हो

गया। बाबा ने कहा कि बोरियाँ मत झाडो और एक चादर ऊपर डाल दो जितने आटे की जरूरत हो ले लो तथा घी खत्म हो गया तो कुऐ के पानी से ही घी का काम चलाओ। इस अपार समुदाय के लिए भोजन पानी की सारी व्यवस्थायें बाबा की चमत्कारी घटनायें हैं बाबा का तपोबल-चरित्रबल विद्याबल इतना तीव्र था कि जैन-जैनेतर समाज विशेष प्रभावित हुआ। परिणाम स्वरूप भगवान् ऋृषभदेव ओर बाबा ऋृषभदास के हजारों अनन्य भक्त बन गये तथा दूर-दूर से यात्री आते हैं और उनकी शुद्ध हृदय से की गई कामनाओं की पूर्ति इस चमत्कारी जिनालय में आकर होती है। तभी से यह क्षेत्र दि0 जैन अतिशय क्षेत्र मरसलगंज के नाम से प्रसिद्ध हो गया है।

वि. सं. 2001 में विशाल पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई जिसमें नई वेदियाँ 1008 भगवान शान्ति नाथ, भगवान नेमिनाथ की पद्मासन प्रतिमायें विराजमान की गयी हैं। मेला भूमि की सीमा पर 5 विशाल द्वार बनवाये गये हैं जिन्हें श्री ऋृषभदेव द्वार, श्री दौलतराम द्वार, श्री मानिक द्वार, श्री अभयद्वार एवं श्री विजय द्वार के नाम से जाना जाता है। मेला भूमि के बीच में अंहिसा स्तम्भ कलात्मक एवं सुदीर्घ बना हुआ है। भीतर वाले मन्दिर के भूभाग में बाबा ऋृषभदास की ध्यान गुफा है, जिसमें बाबा की चरण पादुका है। जहां मानव शान्ति का अनुभव करता है, भक्तों का मानना है कि आज भी भगवान आदिनाथ के समक्ष की गई कामनाओं की पूर्ति होती है तथा बाबा की चरणरज लगाने से प्रेत-बाधायें दूर होती है। यहां प्रतिवर्ष भगवान ऋृषभदेव की पावन जन्म जयन्ती एक विशाल मेले के रूप में मनाई जाती है।

बी-677 कमलानगर, आगरा
दूरभाष - 381645

समवसरण : एक विमर्श

-समणी मंगलप्रज्ञा

जैन आगम साहित्य एवं बौद्ध साहित्य में विभिन्न मतवादों का उल्लेख प्राप्त है।[1] उपनिषदों में भी यत्र-तत्र विभिन्न मतवादों का उल्लेख है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कालवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद आदि की चर्चा है।[2] मैत्रायणी उपनिषद् में कालवाद की स्पष्ट मान्यता प्रचलित है।[3]

भगवान् महावीर के युग में मतवादों की बहुलता थी। दृष्टिवाद नाम के बारहवें अंग में 363 दृष्टियों का निरूपण और निग्रह किया जाता है, ऐसा धवला में उल्लेख है-

एषां दृष्टिशतानां त्रयाणां त्रिषष्ट्युत्तराणां प्ररूपणं निग्रहश्च दृष्टिवादे क्रियते।[4]

दृष्टिवाद के सम्बन्ध में ''समवायांग एवं नंदी में इस प्रकार का उल्लेख नहीं है, फिर भी दृष्टिवाद नाम से ही प्रमाणित होता है कि उसमें समस्त दृष्टियों-दर्शनों का निरूपण है। दृष्टिवाद द्रव्यानुयोग है। तत्त्वमीमांसा उसका मुख्य विषय है। इसलिए उसमें दृष्टियों का निरूपण होना स्वाभाविक है।''[5]

भगवान् महावीर के युग में 363 मतवाद थे-यह समवायगत सूत्रकृतांग के विवरण[6] तथा सूत्रकृतांगनिर्युक्ति[7] से ज्ञात होता है, किन्तु उन मतवादों तथा उनके आचार्यों के नाम वहां उल्लिखित नहीं है। जैन परम्परा के आदि साहित्य में ये भेद तत्कालीन मतवादों के रूप में संकलित कर दिये गये थे, किन्तु उत्तरवर्ती साहित्य में उनकी परम्परागत संख्या प्राप्त रही, उनका प्रत्यक्ष परिचय नहीं रहा। उत्तरवर्ती व्याख्याकारों ने इन मतवादों को गणित की प्रक्रिया से समझाया है[8] किन्तु वह प्रक्रिया मूलस्पर्शी नहीं लगती। ऐसा प्रतीत होता है कि 363 मतों की मौलिक अर्थ-परम्परा विच्छिन्न होने के पश्चात् उन्हें गणित की प्रक्रिया के आधार पर समझाने का प्रयत्न किया गया है। उस वर्गीकरण से दार्शनिक अवधारणा का सम्यक् बोध नहीं हो पाता है।

दार्शनिक विचारधारा के संदर्भ में समवसरण की अवधारणा

जैन आगम साहित्य में चार समवसरणों का उल्लेख है।[9] उनमें इन 363 मतवादों का समाहार हो जाता है। सूत्रकृतांग प्रथम श्रुतस्कन्ध के बारहवें अध्ययन का नाम ही समवसरण है तथा उसका प्रारम्भ इन चार समवसरणों के उल्लेख से ही होता है-

चत्तारि समोसरणाणिमाणि पावादुया जाइं पुढो वयंति।
किरियं अकिरियं विणयं ति तइयं अण्णामाहंसु चउत्थमेव॥[10]

समवसरण का अर्थ है-वाद-संगम। जहां अनेक दर्शनों या दृष्टियों का मिलन होता है, उसे समवसरण कहते हैं-

समवसरंति जेसु दरिसणाणि दिट्ठीओ वा ताणि समोसरणाणि।[11]

क्रियावाद, अक्रियावाद, अज्ञानवाद एवं विनयवाद ये चार समवसरण हैं। निर्युक्ति में अस्ति के आधार पर क्रियावाद, नास्ति के आधार पर अक्रियावाद, अज्ञान के आधार पर अज्ञानवाद और विनय के आधार पर विनयवाद का प्रतिपादन किया है।[12]

क्रियावाद

चार समवसरणों में एक है- क्रियावाद। क्रियावाद और अक्रियावाद का चिंतन आत्मा को केन्द्र में रखकर किया गया है। क्रियावाद आत्मा का अस्तिव मानते हैं। आत्मा है, वह पुनर्भवगामी है। वह कर्म का कर्ता है, कर्म-फल का भोक्ता है और उसका निर्वाण होता है- यह क्रियावाद का पूर्ण लक्षण है।

क्रियावाद की विस्तृत व्याख्या दशाश्रुतस्कन्ध में मिलती है। उसके अनुसार जो आस्तिक होता है, सम्यग्वादी होता है, इहलोक-परलोक में विश्वास करता है, कर्म एवं कर्मफल में विश्वास करता है। वह क्रियावादी है।[13] दशाश्रुतस्कन्ध के विवेचन से क्रियावाद के चार अर्थ फलित होते हैं- आस्तिकवाद, सम्यग्वाद, पुनर्जन्म और कर्मवाद। सूत्रकृतांग में क्रियावाद के आधारभूत सिद्धान्तों का उल्लेख प्राप्त होता है। वे सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

(1) आत्मा है (2) लोक है (3) आगति और अनागति है (4) शाश्वत

और अशाश्वत है (5) जन्म और मरण है (6) उपपात और च्यवन है (7) अधोगमन है (8) आस्रव और संवर है (9) दु:ख और निर्जरा है।[14]

क्रियावाद में उन सभी धर्म-वादों को सम्मिलित किया गया है जो आत्मा आदि पदार्थों के अस्तित्व में विश्वास करते थे और जो आत्म-कर्तृत्व के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे। आचारांग में आत्मवाद, लोकवाद, कर्मवाद और क्रियावाद का उल्लेख है।[15] आचारांग में आत्मवाद, लोकवाद, कर्मवाद और क्रियावाद का पृथक्-पृथक् निरूपण है। यहां क्रियावाद का अर्थ केवल आत्म-कर्तृत्ववाद ही होगा, किंतु समवसरण के प्रसंग में आगत क्रियावाद का तात्पर्य आत्मवाद, कर्मवाद आदि सभी सिद्धान्तों की समन्विति से है।

क्रियावादी जीव का अस्तित्व मानते हैं। उसका अस्तित्व मानने पर भी वे जीव के स्वरूप के विषय में एकमत नहीं हैं। कुछ जीव को सर्वव्यापी मानते हैं, कुछ उसे अ-सर्वव्यापी मानते हैं। कुछ मूर्त्त मानते हैं, कुछ अमूर्त्त मानते हैं, कुछ अंगुष्ठ जितना मानते हैं और कुछ श्यामाक तंदुल जितना। कुछ उसे हृदय में अधिष्ठित प्रदीप की शिखा जैसा मानते हैं। क्रियावादी कर्मफल को मानते हैं।[16] क्रियावादी को आस्तिक भी कहा जा सकता है। क्योंकि ये अस्ति के आधार पर तत्त्वों का निरूपण करते हैं।[17]

तत्त्वार्थवार्तिक, षड्दर्शन समुच्चय आदि ग्रन्थों में क्रियावादी, अक्रियावादी आदि के कुछ आचार्यों का नामोल्लेख हुआ है।[18]

जो क्रिया को प्रधान मानते हैं। ज्ञान के महत्त्व को अस्वीकार करते हैं। उनको भी कुछ विचारक क्रियावादी कहते हैं।[19]

श्री हर्मन जेकोबी ने वैशेषिकों को क्रियावादी कहा है।[20] यद्यपि उन्होंने इस स्वीकृति का कोई हेतु नहीं दिया है तथा श्रीमान् जे. सी. सिकन्दर ने श्रमण निर्ग्रन्थों एवं न्याय-वैशेषिकों को क्रियावाद के अन्तर्गत सम्मिलित किया है। इस समाहार का हेतु उन्होंने आत्म-अस्तित्व एवं आत्म-कर्तृत्व की स्वीकृति को माना है।[21] किंतु ये दोनों मत विमर्शनीय हैं क्योंकि श्रमण निर्ग्रन्थों का प्रस्तुत क्रियावाद में समाहार नहीं हो सकता तथा वैशेषिक की अवधारणा भी सर्वथा क्रियावाद के अनुकूल नहीं है। सूत्रकृतांग चूर्णि में तो उसे स्पष्ट

रूप से अक्रियावादी कहा है[22] तथा स्थानांग में अक्रियावाद के आठ प्रकार में एक अनेकवादी है। उसके उदाहरण के रूप में आचार्य महाप्रज्ञजी ने वैशेषिक दर्शन का उल्लेख किया है।[23]

अक्रियावाद

जो आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते उसे अक्रियावादी कहा जाता है। केवल चित्त शुद्धि को आवश्यक एवं क्रिया को अनावश्यक मानने वाले अक्रियावादी कहलाते हैं। वे बौद्ध दार्शनिक हैं।[24] सूत्रकृतांग के प्रथम अध्ययन में बौद्धों को क्रियावादी कहा गया है[25] तथा समवसरण अध्ययन की चूर्णि में बौद्धों को अक्रियावादी कहा गया है।[26] मुनि जम्बूविजयजी ने अपेक्षाभेद के आधार पर समन्वय करने का संकेत किया है तथा अंगुत्तर निकाय में बुद्ध को अक्रियावादी कहा है, ऐसा भी उन्होंने उल्लेख किया है।[27] अक्रियावादी क्रिया अर्थात् अस्तित्व का सर्वथा उच्छेद मानते हैं। उनका अभिमत है कि सभी पदार्थ क्षणिक हैं। किसी भी क्षणिक पदार्थ की दूसरे क्षण तक सत्ता नहीं रहती अतः उसमें क्रिया की सम्भावना ही नहीं है। इसीलिए आत्मा आदि नित्य पदार्थों का अस्तित्व नहीं है। कोक्रुल, द्विरोमक, काण्ठेवि, सुगत आदि प्रमुख अक्रियावादी हैं।[28]

निर्युक्तिकार ने 'नास्ति' के आधार पर अक्रियावाद की व्याख्या की है।[29] नास्ति के चार फलित होते हैं-

1. आत्मा का अस्वीकार
2. आत्मा के कर्तृत्व का अस्वीकार
3. कर्म का अस्वीकार और
4. पुनर्जन्म का अस्वीकार।[30]

अक्रियावादी को नास्तिकवादी, नास्तिकप्रज्ञ एवं नास्तिकदृष्टि कहा गया है।[31] स्थानांगवृत्ति में अक्रियावादी को नास्तिक भी कहा गया है।[32]

स्थानांग सूत्र में अक्रियावादी के आठ प्रकार बतलाए गए हैं[33]-

1. एकवादी-एक ही तत्त्व को स्वीकार करने वाले।

2. अनेकवादी-धर्म और धर्मी को सर्वथा भिन्न मानने वाले अथवा सकल पदार्थों को विलक्षण मानने वाले, एकत्व को सर्वथा अस्वीकार करने वाले।
3. मितवादी-जीवों को परिमित मानने वाले।
4. निर्मितवादी-ईश्वरकर्तृत्ववादी।
5. सातवादी-सुख से ही सुख की प्राप्ति मानने वाले, सुखवादी।
6. समुच्छेदवादी-क्षणिकवादी।
7. नित्यवादी-लोक को एकान्त मानने वाले।
8. असत् परलोकवादी-परलोक में विश्वास न करने वाले।

स्थानांग में अक्रियावाद का प्रयोग अनात्मवाद एवं एकान्तवाद दोनों अर्थों में हुआ है। इन आठ वादों में छह वाद एकान्तदृष्टि वाले हैं। समुच्छेदवाद तथा असत्परलोकवाद-ये दो अनात्मवाद हैं। उपाध्याय यशोविजयजी ने धर्म्यंश की दृष्टि से जैसे चार्वाक को नास्तिक कहा है, वैसे ही धर्मांश की दृष्टि से सभी एकान्तवादियों को नास्तिक कहा है-

> धर्म्यंशे नास्तिको ह्येको, बार्हस्पत्य: प्रकीर्तित:।
> धर्मांशे नास्तिका ज्ञेया: सर्वेऽपि परतीर्थिका:।।[34]

स्थानांग में प्रस्तुत वादों का संकलन करते समय कौन-सी दार्शनिक धाराएं सामने रही होगी, कहना कठिन है, किंतु वर्तमान में उन धाराओं के संवाहक दार्शनिक निम्न है-

1. एकवादी- (1) ब्रह्माद्वैतवादी-वेदान्त।
(2) विज्ञानाद्वैतवादी-बौद्ध।
(3) शब्दाद्वैतवादी-वैयाकरण।

ब्रह्माद्वैतवादी के अनुसार ब्रह्म, विज्ञानाद्वैतवादी के अनुसार विज्ञान और शब्दाद्वैतवादी के अनुसार शब्द पारमार्थिक तत्त्व है, शेष तत्त्व अपारमार्थिक है, इसीलिए ये सारे एकवादी हैं।

2. अनेकवादी-वैशेषिक अनेकवादी दर्शन है। उसके अनुसार धर्म-धर्मी, अवयव-अवयवी भिन्न-भिन्न है।[35]

3. मितवादी- (1) जीवों की परिमित संख्या मानने वाले। इसका विमर्श स्याद्वादमंजरी में किया गया है।[36]

(2) आत्मा को अंगुष्ठपर्व जितना अथवा श्यामाक तंदुल जितना मानने वाले। यह औपनिषदिक अभिमत है।

(3) लोक को केवल सात द्वीप-समुद्र का मानने वाले। यह पौराणिक अभिमत है।

4. निर्मितवादी-नैयायिक, वैशेषिक आदि लोक को ईश्वरकृत मानते हैं।

5. सातवादी बौद्ध

6. समुच्छेदवादी-प्रत्येक पदार्थ क्षणिक होता है। दूसरे क्षण में उसका उच्छेद हो जाता है।

7. नित्यवादी-सांख्याभिमत सत्कार्यवाद के अनुसार पदार्थ कूटस्थ नित्य है। कारणरूप में प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व विद्यमान है। कोई भी नया पदार्थ उत्पन्न नहीं होता और कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं होता। केवल उनका आविर्भाव तिरोभाव होता है।[37]

8. असत् परलोकवादी-चार्वाक दर्शन मोक्ष या परलोक को स्वीकार नहीं करता।[38]

चूर्णिकार ने सांख्य दर्शन और ईश्वर को जगत्कर्ता मानने वाले वैशेषिक दर्शन को अक्रियावादी दर्शन माना है[39] तथा पंचभूतवादी, चतुर्भूतवादी, स्कन्ध मात्रिक, शून्यवादी और लोकायतिक-इन दर्शनों को भी अक्रियावाद के अन्तर्गत परिगणित किया है।[40]

वैशेषिक एवं सांख्य दर्शन आत्मवादी है फिर उन्हें अक्रियावादी क्यों कहा गया है? चूर्णि में इसका समाधान नहीं है। सांख्य दर्शन में आत्मा कर्म का कर्ता नहीं है और वैशेषिक दर्शन में आत्मा कर्मफल भोगने में स्वतंत्र नहीं है। इसी अपेक्षा से चूर्णिकार ने दोनों दर्शनों को अक्रियावाद की कोटि में परिगणित किया है, ऐसी सम्भावना की जा सकती है। यह आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का अभिमत है।

अक्रियावादी के 84 भेद माने गये हैं। क्रियावाद की तरह ही इसके भेद भी गणितीय पद्धति के आधार पर ही किये गये हैं।

अज्ञानवाद

अज्ञानवाद का आधार अज्ञान है। अज्ञानवाद में दो प्रकार की विचारधाराएं संकलित हैं। कुछ अज्ञानवादी आत्मा के होने में संदेह करते हैं और उनका मत है कि आत्मा है तो भी उसे जानने से क्या लाभ? दूसरी विचारधारा के अनुसार ज्ञान सब समस्याओं का मूल है, इसलिए अज्ञान ही श्रेयस्कर है।

अज्ञानवादी कहते हैं- अनेक दर्शन हैं और अनेक दार्शनिक हैं। वे सब सत्य को जानने का दावा करते हैं, किंतु उन सबका जानना परस्पर विरोधी है। सत्य परस्पर विरोधी नहीं होता। यदि उन दार्शनिकों का ज्ञान सत्य का ज्ञान होता तो वह परस्पर विरोधी नहीं होता। वह परस्पर विरोधी है, इसलिए सत्य नहीं है। इसलिए अज्ञान ही श्रेय है।[41] ज्ञान से लाभ ही क्या है? शील में उद्यम करना चाहिये। ज्ञान का सार है-शील, संवर। शील और तप से स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त होता है। इसलिए अज्ञान ही श्रेयस्कर है।

प्राचीनकाल में अज्ञानवाद की विभिन्न शाखाएं थीं। उनमें संजयवेलट्ठिपुत्त के अज्ञानवाद या संशयवाद का भी समावेश होता है। सूत्रकृतांग के चूर्णिकार ने अज्ञानवाद की प्रतिपादन पद्धति के सात और प्रकारान्तर से चार विकल्पों का उल्लेख किया है।[42]

सूत्रकृतांग चूर्णिकार ने मृगचारिका की चर्या करने वाली, अटवी में रहकर पुष्प और फल खाने वाले त्यागशून्य संन्यासियों को अज्ञानवादी कहा है।[43]

साकल्य, वाष्कल, कुथुमि, सात्यमुग्रि, नारायण आदि अज्ञानवाद के आचार्य थे।[44]

विनयवाद

विनयवाद का मूल आधार विनय है। इनका अभिमत है कि विनय से ही सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। सूत्रकृतांग चूर्णि के अनुसार विनयवादियों का अभिमत है कि किसी भी सम्प्रदाय या गृहस्थ की निंदा नहीं करनी

चाहिए। सबके प्रति विनम्र होना चाहिए।[45] विनयवादियों के बत्तीस प्रकार निर्दिष्ट हैं। देवता, राजा, यति, याति, स्थविर, कृपण, माता एवं पिता-इन आठों का मन, वचन, काय एवं दान से विनय करना चाहिये।[46] इन आठों को चार से गुणा करने पर इनके बत्तीस भेद हो जाते हैं।

सूत्रकृतांग चूर्णिकार ने 'दाणामा' 'पाणामा' आदि प्रव्रज्याओं को विनयवादी की बतलाया है।[47]

आणमा और पाणमा प्रव्रज्या

भगवती सूत्र में आणामा और पाणामा प्रव्रज्या का स्वरूप निर्दिष्ट है। तामलिप्ति नगरी में तामली गाथापति रहता था। उसने 'पाणामा' प्रव्रज्या स्वीकार की। पाणामा का स्वरूप वहां वर्णित है। 'पाणामा' प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् वह तामली जहां कहीं इन्द्र-स्कन्ध, रुद्र, शिव, वैश्रमण, दुर्गा, चामुण्डा आदि देवियों तथा राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, ईभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, कौआ, कुत्ता या चाण्डाल को देखता तो उन्हें प्रणाम करता। उन्हें ऊंचा देखता तो ऊंचे प्रणाम करता और नीचे देखता तो नीचे प्रणाम करता।[48]

पूरण गाथापति ने 'दाणामा' प्रव्रज्या स्वीकार की। उसका स्वरूप इस प्रकार है-प्रव्रज्या के पश्चात् वह चार पुट वाली लकड़ी का पात्र लेकर 'बेभेल' सन्निवेश में भिक्षा के लिए गया। जो भोजन पात्र के पहले पुट में गिरता उसे पथिकों को दे देता। जो भोजन दूसरे पुट में गिरता उसे कौए, कुत्तों को दे देता। जो भोजन तीसरे पुट में गिरता उसे मच्छ-कच्छों को दे देता। जो चौथे पुट में गिरता वह स्वयं खा लेता। यह 'दाणामा' प्रव्रज्या स्वीकार करने वालों का आचार है।[49]

विनय का अर्थ

वृत्तिकार शीलांकाचार्य ने भी विनय का अर्थ विनम्रता ही किया है।[50] किंतु आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार प्रस्तुत प्रसंग में विनय का अर्थ आचार होना चाहिये। उन्होंने अपने अभिमत की पुष्टि में जैन आगमों के संदर्भ उद्धृत किये हैं। ज्ञाताधर्मकथा में जैन धर्म को विनयमूलक धर्म बतलाया गया है। थावच्चापुत्र

ने शुकदेव से कहा-मेरे धर्म का मूल विनय है।[51] यहां विनय शब्द महाव्रत और अणुव्रत अर्थ में व्यवहृत है। बौद्धों के विनयपिटक ग्रन्थ में आचार की व्यवस्था है। विनय शब्द आचार अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। विनय शब्द के आधार पर विनम्रता और आचार-ये दोनों अर्थ अभिप्रेत हैं। आचार पर अधिक बल देने वाली दृष्टि का प्रतिपादन बौद्ध साहित्य में भी मिलता है। जो लोग आचार के नियमों का पालन करने मात्र से शील-शुद्धि होती है- ऐसा मानते थे, उन्हें 'शीलब्बतपरामास' कहा गया है।[52] केवल ज्ञानवादी और केवल आचारवादी-ये दोनों धाराएं उस समय प्रचलित थीं। ज्ञानवादी जैसे ज्ञान के द्वारा ही सिद्धि मानते थे, वैसे ही आचारवादी केवल आचार पर ही बल देते थे। ज्ञानवाद और आचारवाद दोनों एकांगी होने के कारण मिथ्यादृष्टि की कोटि में आते हैं। विनयवाद के द्वारा ऐकान्तिक आचारवाद की दृष्टि का निरूपण किया गया है। विनम्रतावाद आचारवाद का ही एक अंग है, इसलिए उसका भी इसमें समावेश हो जाता है, किंतु विनय का केवल विनम्रता अर्थ करने से आचारवाद का उसमें समावेश नहीं हो सकता।[53]

वशिष्ठ पाराशर आदि इस दर्शन के विशिष्ट आचार्य थे।[54]

जैसा कि हमने पूर्व में उल्लेख किया था कि चार वादों के 363 भेद मात्र गणितीय पद्धति के आधार पर किये हैं। जिसका विस्तार से उल्लेख गोम्मटसार में भी हुआ है।[55]

क्रियावादी वस्तु को 'अस्ति' रूप ही मानते हैं। वे वस्तु को स्वरूप एवं पररूप दोनों ही प्रकार से अस्ति रूप मानते हैं। नित्य-अनित्य के विकल्प से भी वस्तु को नित्य मानते हैं। काल, ईश्वर, आत्मा, नियति एवं स्वभाव से जीव, अजीव आदि नौ पदार्थों को स्वतः, परतः, नित्य एवं अनित्य के विकल्प से 'अस्ति' रूप मानते हैं। इनको परस्पर गुणित करने से क्रियावादी के 180 भेद हो जाते हैं।[56]

अक्रियावादी वस्तु को स्वरूप एवं पररूप दोनों ही अपेक्षा से 'नास्ति' कहते हैं। अक्रियावाद में पुण्य, पाप एवं नित्य-अनित्य के विकल्प की योजना नहीं है। जीव आदि सात पदार्थों की काल, ईश्वर आदि के स्वतः परतः से

गुणित करने पर उनके सत्तर भेद होते हैं तथा नियति एवं काल की अपेक्षा जीव आदि सात पदार्थ नहीं है, इस गुणन से उनके 14 भेद हो जाते हैं। 70 एवं 14 मिलकर 84 हो जाते हैं। गोम्मटसार के उल्लेख से ज्ञात होता है अक्रियावादियों में भी दो प्रकार की अवधारणा थीं। एक तो काल आदि पांचों से ही जीव आदि का निषेध करते हैं तथा दूसरे मात्र नियति एवं काल की अपेक्षा से जीव आदि पदार्थों का निषेध करते हैं दोनों का एकत्र समाहार कर लेने से अक्रियावादी के 84 भेद हो जाते हैं।[57]

प्रस्तुत विमर्श से यह भी परिलक्षित हो रहा है कि कालवादी आदि दार्शनिक क्रियावादी एवं अक्रियावादी दोनों ही प्रकार के थे। जो काल आदि के आधार पर जीव आदि पदार्थो का अस्तित्व सिद्ध करते थे वे क्रियावादी हो गये जो इनका इन्हीं हेतुओं से नास्तिक सिद्ध करते थे वे अक्रियावादी हो गये। अक्रियावादियों ने पुण्य, पाप, नित्यता-अनित्यता आदि विकल्पों को क्यों नहीं स्वीकार किया, यह अन्वेषणीय है।

नव तत्त्व का आधार

क्रियावादी, अक्रियावादी के भेद नवतत्त्व को आधार बनाकर किये गये हैं। नव तत्त्वों के संदर्भ में इस प्रकार का मात्र वैचारिक प्रस्थान ही रहा होगा, हो सकता है श्रमण निर्ग्रन्थों में इस प्रकार का पारस्परिक विचार होता रहा हो उसका ही उल्लेख इन मतवादों में हो गया हो। इनके वास्तविक प्रस्थानों का अस्तित्व हो, ऐसा संभव नहीं लगता।

जीव आदि नव पदार्थो को अस्ति, नास्ति सात भंगों से साथ गुणित करने पर तिरेसठ भेद हो जाते हैं। जीव है, ऐसा कौन जानता, जीव नहीं है ऐसा कौन जानता है, इस प्रकार सभी भंगों के साथ संयोजना की जाती है।[58]

देव, राजा, ज्ञानी, यति, वृद्ध, बालक, माता-पिता का मन, वचन, काया एवं दान-सम्मान से विनय करना चाहिये। आठ को चार गुणित करने पर बत्तीस भेद हो जाते हैं।[59]

सूत्रकृतांग सूत्र में क्रियावाद आदि चार वादों का उल्लेख है। 'महावीरत्थुई' अध्ययन में इन वादों के उल्लेख के साथ यह सूचना दी गयी कि महावीर ने

इन वादों के पक्ष का निर्णय किया तथा सारे वादों को जानकार वे यावज्जीवन संयम में उपस्थित रहे।[60] प्रस्तुत वक्तव्य से यह ज्ञात नहीं होता कि महावीर का स्वयं का पक्ष कौन-सा है किंतु सूत्रकृतांग के बारहवें अध्ययन में चार समवसरण का उल्लेख करने के पश्चात् क्रमशः वे अज्ञानवाद, विनयवाद एवं अक्रियावाद की अवधारणा को निराकृत करते हैं तथा अन्त में क्रियावाद की अवधारणा का औचित्य प्रतिपादित करते हैं [61] इससे ज्ञात होता है कि महावीर क्रियावाद की अवधारणा के पक्षधर हैं। आवश्यक सूत्र में साधक कहता है- मैं अक्रिया का छोड़ता हूं तथा क्रिया को स्वीकार करता हूं।[62] इससे अभिव्यंजित होता है कि जैनधर्म क्रियावादी है, किंतु क्रिया का यदि केवल आचार अर्थ ही किया जाये तो इसमें पूर्ण जैन दृष्टि समाहित नहीं होती क्योंकि जैनधर्म में ज्ञान और आचार को समान महत्त्व दिया गया है कदाचित् ज्ञान को आचार से अधिक महत्त्व ही दिया गया है। दशवैकालिक का 'पढमं नाणं तओ दया'[63] का वक्तव्य इस तथ्य का साक्षी है। उत्तरवर्ती जैनाचार्यों ने भी ज्ञान एवं चारित्र दोनों को ही मोक्षमार्ग के घटक तत्त्व के रूप मे स्वीकार किया है।[64]

भगवती में वर्णित समवसरण

भगवती सूत्र के तीसवें शतक का नाम ही समवसरण है। वहां पर भी क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी एवं विनयवादी के भेद से चार प्रकार के समवसरणों का उल्लेख है।[65] वहां पर क्रियावादी आदि प्रत्येक को समवसरण कहा है। भगवती वृत्ति में समवसरण की परिभाषित करते हुये कहा गया-नाना परिणाम वाले जीव कथंचित् समानता के कारण जिन मतों में समाविष्ट हो जाते हैं वे समवसरण कहलाते हैं अथवा परस्पर भिन्न क्रियावाद आदि मतों में थोड़ी समानता के कारण कहीं पर कुछ वादियों का समावेश हो जाता है वे समवसरण हैं।[66] भगवती के प्रसंग में एक बात ध्यातव्य है कि अन्यत्र प्रायः सभी जैन शास्त्रों में इन चारों को मिथ्यादृष्टि कहा किंतु भगवती के प्रस्तुत प्रसंग में क्रियावादियों को सम्यग्दृष्टि माना गया है।[67] भगवती सूत्र में कहा गया-अलेश्यी अर्थात् अयोगी केवली क्रियावादी ही होते हैं।[68] जो क्रियावादी होते हैं वे भवसिद्धिक ही होते हैं, अक्रियावादी, अज्ञानवादी एवं विनयवादी भवसिद्धिक एवं अभवसिद्धिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं।[69] सम्यक्मिथ्यादृष्टि

जीव क्रियावादी एवं अक्रियावादी दोनों ही नहीं होते अपितु अज्ञानवादी अथवा विनयवादी होते हैं।[70] भगवती के उपर्युक्त वचन से यह फलित होता है कि जैन क्रियावादी है।

सम्यक् दृष्टि एवं क्रियावाद

सूत्रकृतांग में भी क्रियावाद के प्रतिपादक की अर्हता में उसके ज्ञानपक्ष को ही महत्त्व दिया है।[71] ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आगम युग में सम्पूर्ण विचारधाराओं को चार भागों में स्थूल रूप से विभक्त कर दिया और जैन दर्शन का भी समावेश उन्हीं में (क्रियावाद) कर दिया यद्यपि यह सत्य है कि सारे क्रियावादियों की अवधारणा पूर्ण रूप से एक जैसी नहीं थी, किंतु कुछ अवधारणाएं उनकी परस्पर समान थी जैसा कि दशाश्रुतस्कन्ध के उल्लेख से स्पष्ट है। उन्हीं कुछ समान अवधारणाओं के आधार पर वे एक कोटि में परिगणित होने लगे। जैसे वैदिक और श्रमण दो परम्पराएं हैं। जैन, बौद्ध श्रमण परम्परा के अंग हैं, किंतु इसका यह तात्पर्य नहीं कि श्रमण परम्परा के होने के कारण उनकी सारी अवधारणाएं एक जैसी हो, हां, इतना तो स्पष्ट है कि उनमें कुछ अवधारणाएं समान हैं, जिससे वे वैदिक धारा के पृथक् होकर श्रमण परम्परा में समाहित होते हैं ठीक इसी प्रकार क्रियावाद के संदर्भ में समझना चाहिये। सारे क्रियावादी जैन नहीं हैं। यह स्पष्ट है। अतः सारे क्रियावादी सम्यग्दृष्टि भी नहीं हो सकते, किंतु जो सम्यग्दृष्टि है वह क्रियावादी है इस व्याप्ति को स्वीकार करने में कोई आपत्ति प्रतीत नहीं होती।

निर्युक्ति में कहा भी है- 'सम्मदिट्ठी किरियावादी।[72] अर्थात् जो सम्यक्दृष्टि हैं वे क्रियावादी हैं किन्तु इस वक्तव्य को उलटकर नहीं कहा जा सकता कि सारे क्रियावादी सम्यक्दृष्टि होते हैं। चूर्णिकार ने यह भी कहा है कि निर्ग्रन्थों को छोड़कर 363 में अवशिष्ट सारे मिथ्यादृष्टि है।[73] इससे स्पष्ट है कि चूर्णिकाल तक निर्ग्रन्थ धर्म प्रस्तुत क्रियावाद का ही भेद रहा है।

आगम उत्तरकालीन साहित्य में इन सारे ही वादों को मिथ्यादृष्टि समझा जाने लगा जैसा कि भगवतीवृत्ति से स्पष्ट है।[74] यद्यपि टीकाकर भी यह मानने को तो विवश हैं ही कि भगवती में आगत क्रियावाद में सम्यग्दृष्टि का भी

ग्रहण है। दार्शनिक परम्परा के ग्रन्थों में तो इनका विवेचन एकान्तवाद के रूप में किया गया है।[75] गोम्मटसार ने इन 363 मतों को स्वच्छंद दृष्टि वालों के द्वारा परिकल्पित माना है।[76] इससे स्पष्ट हो जाता है कि उत्तरवर्ती दार्शनिक जैन दर्शन का समाहार प्रस्तुत क्रियावाद में करने के पक्ष में नहीं है।

सन्दर्भ

(1) (क) *सूयगडो, 1/1 अध्ययन, 12वां, सूयगडो 2/1, (ख) सामञ्ञफलसुत्त (दीघनिकाय)*
(2). श्वेताश्वतर उपनिषत्, 1/2, 6/1, (3) मैत्रायणी उपनिषत्, 6/14, 1.5, (4) षट्खंडागम, प्रथम खंड, धवला पृ. 108, (5) सूयगडो 1, भूमिका पृ. 22, (6) समवाओ, पइण्णग समवाओ, सूत्र 90,
(7) सूत्रकृतांग निर्युक्ति, गा. 1190, असितिसयं किरियाणं अक्किरियाण च होति चुलसीति अण्णाणिय सतट्ठी वेणइयाणं च बत्तीसा।। (8) गोम्मटसार 2, (कर्मकाण्ड) गा. 877-888, पृ. 1238-1243, (9) अंगसुत्ताणि 2 (भगवई) 30/1, (10) सूयगडो, 1/12/1, (11) सूत्रकृतांगचूर्णि, पृ. 256, (12) सूत्रकृतांगनिर्युक्ति, गा. 118, अत्थि त्ति किरियवादी वंदति, नत्थि त्ति अकिरियवादी य। अण्णाणी अण्णाणं, विणइत्ता वेणइयवादी।।, (13) दशाश्रुतस्कन्ध, दशा 6 सूत्र *7, (14) सूयगडो, 1/12/20, 21, (15) आयारो, 1/5, से आयावाई* लोगावाई, कम्मावाई, किरियावाई।, (16) सूत्रकृतांगचूर्णि, पृ. 256, किरियावादीणं अत्थि जीवो, अत्थित्तें सति केसिंचि श्यामाकतन्दुलमात्रः केसिंचि असव्वगतो हिययाधिट्ठाणो....।, (17) स्थानांगवृत्ति, पृ. 179, क्रिया जीवाजीवादिरर्थोऽस्तीत्येवें रूपां वदन्तीति क्रियावादिनः आस्तिका इत्यर्थः।, (18) (क) तत्त्वार्थवार्तिक, 8/1 (ख) षड्दर्शनसमुच्चय, पृ. 13,
(19) भगवतीवृत्ति, पत्र 944, अन्ये त्वाहु-क्रियावादिनो ये ब्रुवते क्रियाप्रधानं किं ज्ञानेन।,
(20) Jacobi, Herman, Jaina Sutras, Part II, 1980 Introduction P XXV. vaiseshika, proper, which is a Kriyavada system,
(21) Sikdr, J.C, Studies in Bhagawati sutra (मुज्जफरपुर, 1964) PP 449-450 The Kriyavadins may be identified with the followers of the Nyaya and vaisesika systems along with the Sramana Nirgrantha
(22) सूत्रकृतांगचूर्णि, पृ. 254, सांख्यवैशेषिका ईश्वरकारणादि अकिरियवादी।
(23) ठाणं, 8/22 का टिप्पण, (24) भगवती वृत्ति, पत्र 944, अन्ये त्वाहुः-अक्रियावादिनो ये ब्रुवते किं क्रियया चित्तशुद्धिरेव कार्या, ते च बौद्धा इति।, (25) सूयगडो, 1/1/51, (26) सूत्रकृतांगचूर्णि, पृ. 256, ...*सुण्णवादिणो............अकिरियावादिणो।*, (27) सूयगडंगसुत्तं, (मुनि जम्बूविजय, बम्बई 1978) प्रस्तावना, पृ. *10 (टिप्पण संख्या 3)*, (28) *षड्दर्शन समुच्चय, पृ. 21*, (29) सूत्रकृतांग *निर्युक्ति, गा. 118*, ... नत्थि त्ति अकिरियवादी य।, (30) दशाश्रुतस्कन्ध, दशा 6, सूत्र 6, (31) वही, सूत्र 6, (32) स्थानांगवृत्ति, पृ. 179, अक्रियावादिनो नास्तिका इत्यर्थः।, (33) ठाणं, 8/22, (34) न्योपदेश, श्लोक 126,
(35) अन्ययोगव्यवच्छेदिका, श्लोक 4, (36) वही, शलोक 29, (37) सांख्यकारिका 9, (38) सूयगडो (प्रथम) टिप्पण, पृ. 831-33, (39) सूत्रकृतांगचूर्णि, पृ. 254, सांख्या वैशेषिका ईश्वरकारणादि अकिरियावादी।
(40) वही, पृ. 256, पंच महाभूतिया चतुब्भूतिया खंधमेत्तिया सुण्णवादिणो लोगाइतिगा य वादि अकिरियावादिणो।
(41) सूत्रकृतांगवृत्ति, पत्र 35, (42) सूत्रकृतांगचूर्णि, पृ. 255-256, (43) वही, पृ. 256, तेसु मिगचारियादयो अडवीए पुप्फ-फलभक्खिणो इच्चादि अण्णाणिया।, (44) तत्त्वार्थवार्तिक, 8/1, (45) सूत्रकृतांगचूर्णि, पृ. 206, वेणइयवादिणो भणंति-ण कस्स वि पासंडिणोऽस्स गिहत्थस्स वा णिंदा कायव्वा सव्वस्सेव विणीयविणयेण होयव्वं। (46) वही, पृ. 255, वैनयिकमतं-विनयश्चेतो-वाक्-काय-दानतः कार्यः।

सुर-नृपति-यति-ज्ञाति-नृ स्थविरा ध-मातृ-पितृषु सदा।। (47 वही, पृ. 254, वेणइयवादीण छत्तीसा दाणामपाणामादिप्रव्रज्या।, (48) अगसुत्ताणि 2 (भगवई) 3/34, (49) वही, 3/102, तए ण तस्स पूरणस्स गाहावइस्स अण्णया कयाइ सयमेव चउप्पुडयं दारुमय पडिग्गहग गहाय मुडे भवित्ता दाणामाए पव्वज्जाए पव्वइत्तए।, (50) सूत्रकृतागवृत्ति, पृ 213, इदानी विनयो विधेयः।, (51) ज्ञाताधर्मकथा, 1/5/59, तए ण थावच्चापुत्ते. ... सुदंसणं एव वयासी-सुदंसणा। विणयमूलए धम्मे पण्णत्ते।, (52) अभिधम्मपिटके धम्मसगणि (मपा भिक्षु जगदीश काश्यप, नालन्दा, 1960) पृ 277, तत्थ कतमो सीलब्बतपरामासो?
(53) सूयगडो, 1/12 के टिप्पण, पृ 499,
(54) षड्दर्शनसमुच्चय, पृ 29, वशिष्ठपाराशरवाल्मीकिवयासेलापुत्रसत्यदतप्रभृतयः।
(55) वही, (कर्मकाण्ड) गाथा 877 से 888, (56) वही, गाथा 877, अत्थि सदो परदो वि य णिच्चाणिच्चत्तणेण य णवत्था।, कालीसरप्पणियदिमहावेहि य तेहि भगा हु।।
(57) वही, गाथा 878, (58) गोम्मटसार 2, गाथा 876, (59) वही, गाथा 888, (60) सूयगडो, 1/6/27
(61) सूयगडो, 1/12/1-22, (62) श्रमण प्रतिक्रमण, पृ 32, अकिरिय परियाणाभि किरिय उवसंपज्जामि।
(63) दसवेआलिय, 4/10, (64) तत्त्वार्थसूत्र, 1/1, "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः"
(65) अगसुत्ताणि 2 (भगवई) 30/1, (66) भगवती वृत्ति, पृ 944, समवसरन्ति नानापरिणामा जीवा· कथंचितुल्यतया येषु मतेषु तानि समवसरणानि।

समवसृतयो वाऽन्योन्यभिन्नेषु क्रियावादादि मतेषु कथंचितुल्यत्वेन कचिद् केषांचित् वादिनामवताराः समवसरणानि।

(67) भगवतीवृत्ती, पृ 944, एत च सर्वेऽप्यन्यत्र यद्यपि मिथ्यादृष्टयोऽभिहितास्तथाऽपीहाद्या· सम्यग्दृष्टयो ग्राह्या, सम्यगस्तित्ववादिनामेव तेषा समाश्रयणात्।, (68) अगसुत्ताणि 2 (भगवई) 30/4, (69) वही, 30/30
(70) वही, 30रु6, (71) सूयगडो, 1/12/20-22, (72) सूत्रकृताग निर्युक्ति, गाथा 121
(73) सूत्रकृताग चूर्णि, 253, तिण्णि तिसट्ठा पावादियसयाणि णिग्गथ मोत्तूण मिच्छादिट्ठिणो त्ति
(74) भगवती, वृत्ति पत्र 944, (75) तत्त्वार्थ वार्तिक, 8/1
(76) गोम्मटसार (कर्मकाण्ड) गाथा 889, मच्छइदिट्ठिहि वियप्पियाणि तेसट्ठिजुत्ताणि सयाणि तिण्णि।

पासडिणं वाउलकारणाणि अण्णाणि चित्ताणि हरति ताणि।।

निदेशक-महादेवलाल सरावगी अनेकान्तशोधपीठ
जैन विश्वभारती संस्थान
(मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूं (राज.)